दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० 2499 तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष 29 अंक नं० 4

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन
जिनकी 60वीं जन्मजयन्ती सोनगढ़ में भाद्रपद कृष्ण 2 के दिन
हर्षोल्लासपूर्वक मनायी गई।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

अगस्त : 1973] वार्षिक मूल्य 4) रुपये (340) एक अंक 35 पैसा [श्रावण : 2499

भव्यों के हृदय में दीप प्रज्वलित करनेवाली
पू. बहिनश्री चंपाबहिन के जन्मोत्सव का गीत

जन्मबधाईना रे के सूर मधुर गाजे साहेलडी,
तेजबाने मंदिरे रे के चोघडियां वागे साहेलडी;
कुंवरीनां दर्शने रे के नरनारी हरखे साहेलडी,
वीरपुरी धाममां रे के कुमकुम बरसे साहेलडी।

(साखी)

सीमंधर दरबारना, ब्रह्मचारी भडवीर;
भरते भाळ्या भाग्यथी, अतिशय गुणगंभीर।

नयनोना तेजथी रे के सूर्यतेज लाजे साहेलडी,
शीतळता चंद्रनी रे के मुखडे बिराजे साहेलडी;
उरनी उदारता रे के सागरना तोले साहेलडी,
फूलनी सुवासता रे के बेनीबाना बोले साहेलडी... जन्म०

(साखी)

ज्ञानानंदस्वभावमां, बाळवये करी जोर,
पूर्वाराधित ज्ञाननो, सांध्यो मंगल दोर,

ज्ञायकना बागमां रे के बेनीबा खेले साहेलडी,
दिव्य मति-श्रुतनां रे के ज्ञान चड्यां हेले साहेलडी;
ज्ञायकनो उग्रता रे के नित्य वृद्धि पामे साहेलडी,
आनंदधाममां रे के शीघ्र शीघ्र जामे साहेलडी,... जन्म०

(साखी)

समवसरण-जिनवर तणो, दीधो दृष्ट चितार;
उरमां अमृत सींचीने, कर्यो परम उपकार।

सीमंधर-कुंदनी रे के बात मीठी लागे साहेलडी;
अंतरना भावमां रे के उज्ज्वळता जागे साहेलडी,
खम्मा मुज मातने रे के अंतर उजाळ्यां साहेलडी,
भव्योनां दिलमां रे के दीवडा जगाव्या साहेलडी... जन्म०

आनंद मंगल आज हमारे

[सोनगढ़ में पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन का 60 वाँ जन्मोत्सव]

मंगलमूर्ति स्वानुभूतिसंपन्न अध्यात्मयुगप्रवर्तक परमकृपालु परमपूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की अनन्य भक्त प्रशममूर्ति भगवती पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन की 60वीं जन्मजयंती का मंगल-महोत्सव सुवर्णपुरी में सर्व मुमुक्षु भक्तजनों द्वारा अति आनंदोल्लासपूर्वक मनाया गया।

जन्मजयंती के मंगल आगमन का शुभसंदेश एक सुंदर निमंत्रण-पत्रिका छपवाकर भारतव्यापी समस्त मुमुक्षु मंडलों को तथा विदेशों में निवास करनेवाले मुमुक्षुओं को समय पर पहुँचाया गया था।

'60वीं जन्मजयंती आवी दोडा दोड'—यह मधुर गीत गाकर मुमुक्षु बहिनों ने एक सप्ताह पूर्व सुवर्णपुरी का वातावरण मंगल-महोत्सव की प्रतीक्षा से गुंजित कर दिया था। पूज्य गुरुदेव ने भी पूज्य बहिनश्री की जन्मजयंती के शुभागमन का गीत सुनकर अपने आशीर्वादयुक्त, संमतिपूर्ण स्वर में कहा कि—'बहिनों ने अच्छा गीत गाया, बहिन का जन्मदिन आ रहा है, सबको जागृत कर दिया... आदि-आदि...'

जन्मजयंती का यह पुनीत उत्सव तीन दिन तक मनाया गया था। इस मंगल जन्मोत्सव की शुभकामना हेतु श्री जिनमंदिर में तीन दिन के लिये राजकोट निवासी डॉ. प्रवीणभाई दोशी आदि की ओर से 'पंचपरमेष्ठी-मंडल विधान पूजा' रचायी गई थी।

श्रावण शुक्ला पूर्णिमा इस शुभोत्सव के प्रारंभ का पावन दिवस। मंगल प्रभात से तीनों दिन गोगीदेवी ब्रह्मचर्याश्रम के गगन में गूँजता हुआ नौवतवादन मुमुक्षु हृदयों को पुलकित करता था। इस शुभ प्रसंग को सुशोभित करने के लिये श्री जिनमंदिर तथा ब्रह्मचर्याश्रम को विद्युत-प्रकाश से सजाया गया था। मंगलसूचक विद्युत-स्वस्तिक तथा रंग-बिरंगी विद्युत-शलाकाओं से सुशोभित जिनमंदिर का मनोहर दृश्य मुमुक्षुओं के मन को प्रसन्न करता था। आश्रम की दीवार पर सजाया गया '६०' का चित्ताकर्षक विद्युत-अंक सबको मुदित करता था।

भाद्रपद कृष्णा दोज महोत्सव का मुख्य दिवस—प्रशममूर्ति भगवती जगदम्बा पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन की जन्मजयंती का मंगल दिवस—प्रभातकाल में ही आनंदभेरी के साथ जन्मबधाई के सुमधुर गीतों एवं जयजयकार के मंगल नादों से आश्रम का वातावरण आनंदविभोर हो गया था। पूज्य गुरुदेव के आज के मंगल-प्रवचन से पूर्व ब्रह्मचारी बहिनों ने—

''सखि! दीठुं कौतुक आज माता 'तेज' घरे,
एक आव्या विदेही महेमान निरखी नैन ठरे।''

— गीत द्वारा अपनी अनन्य शरण एकमात्र परमाधार पूज्य बहिनश्री के प्रति श्रद्धा-भक्ति अभिव्यक्त करके आज के मंगल महोत्सव का मंगलाचरण किया था।

पूज्य बहिनश्री पूज्य गुरुदेव के प्रवचन में पधारी, उस शुभ प्रसंग पर बरवाला निवासी श्री चंपकलाल मोहनलाल डगली की धर्मपत्नी श्री प्रभाबहिन ने पूज्य बहिनश्री के विशाल ललाट में केसर का तिलक लगाकर, भक्तिपूर्वक हीरों से बधाई देकर पूज्य गुरुदेव के मंगल सान्निध्य में विशाल मुमुक्षु सभा की उपस्थिति में पूज्य बहिनश्री का बहुमान किया था। यह धन्य अवसर अभूतपूर्व था; वह मनोहारी भक्तिपूर्ण हृदयद्रावक दृश्य देखकर अनेक मुमुक्षुओं के नेत्र आनंदाश्रुओं से छलक उठे थे; मंगल गीतों तथा जयकार के उच्च मधुर नादों से मुमुक्षु समाज ने गगन भर दिया था, सबके हृदय उल्लसित थे, सर्वत्र आनंद एवं प्रसन्नता दृष्टिगोचर होती थी। 'वर्तमान पर्याय को जानने पर ज्ञानी को त्रैकालिक पर्यायों का ज्ञान उसमें साथ आ जाता है'—इस गहन विषय को व्यक्त करते हुए पूज्य गुरुदेव ने भी प्रवचन में बहिनश्री के आज के जन्मोत्सव को दो-तीन बार ऊर्मिभरे भाव से याद किया था।

प्रवचन के पश्चात् श्रद्धांजलि-समर्पण-समारोह में श्री पंडित खीमचंदभाई सेठ, श्री चंपकलाल मोहनलाल डगली तथा श्री पंडित धन्नालालजी ग्वालियरवालों ने श्रद्धा-भक्तिपूर्ण भावभीनी श्रद्धांजलि समर्पित की थी। तत्पश्चात् जन्मजयन्ती के हर्षोपलक्ष में '६०' अंक की इकाई से २४०००) रुपये से अधिक की रकमें श्री महावीर-कुन्दकुन्द दिगम्बर जैन परमागममंदिर के लिये घोषित हुई थीं।

जन्मजयंती के मंगल दिन पूज्य बहिनश्री-बहिन के घर कृपासागर पूज्य गुरुदेव के

आहारदान का मंगल प्रसंग तथा उस प्रसंग पर पूज्य बहिनश्री-बहिन की विशिष्ट गुरुभक्ति उपस्थित जनों को प्रमुदित करती थी। तत्पश्चात् आश्रम के स्वाध्यायभवन में समस्त मुमुक्षु भाई-बहिन पूज्य बहिनश्री के दर्शन करने आये थे। यह प्रसंग भी भक्तिगीतों तथा जयनादों के गुंजन से वातावरण को प्रसन्नतायुक्त बना रहा था। धर्ममाता के प्रति सर्वस्वार्पणभाव से हावभावपूर्वक श्रद्धा-भक्ति द्वारा ब्रह्मचारी बहिनों का आनंद उत्सव की सुंदरता में सुगंध भर रहा था।

इस शुभोत्सव के हर्षोपलक्ष में भाद्रपद कृष्णा दोज को—पूज्य बहिनश्री के मंगल जन्मदिवस पर—राजकोटनिवासी श्री मरघाबेन धीरजलाल शाह के सुपुत्रों की ओर से 'साधर्मी-वात्सल्य' था। तदुपरांत पूज्य गुरुदेव के दोनों प्रवचनों के बाद, पूज्य बहिनश्री को आश्रम के स्वाध्यायभवन में मुमुक्षु समाज द्वारा अभिनंदन-समर्पण के अवसर पर तथा रात्रि को पूज्य बहिनश्री-बहिन की शास्त्र-वचनिका के पश्चात्—इसप्रकार प्रत्येक प्रसंग पर भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की ओर से प्रभावना वितरित की गई थी।

दोपहर को प्रवचन के बाद आरती की बोलियों में श्री सीमंधरभगवान की पहली आरती की बोली के समय श्री ब्रजलाल भाईलाल डेलीवाला की धर्मपत्नी सौ० श्री सविताबहिन ने सुवर्णपुरी के इतिहास में अभूतपूर्व उत्साह से भाग लिया था। पूज्य बहिनश्री की मंगल जन्मजयंती के शुभावसर पर यह लाभ मिलने से वे अपने को धन्य मान रही थीं।

जन्मजयंती के मंगल दिन सायंकाल मेघराज ने, एक महीने की चिर प्रतीक्षा के पश्चात् मूसलधार वर्षा द्वारा, समस्त जनता को आनंदित करके उत्सव की शोभा में अभिवृद्धि की थी।

रात्रि को महिला-मुमुक्षु-समाज में पूज्य बहिनश्री का अध्यात्मरसयुक्त प्रवचन हुआ था। अंत में ब्रह्मचारी बहिनों आदि के द्वारा गाये गये प्रसंगोचित मांगलिक भक्तिगीत इत्यादि के साथ महोत्सव की पूर्णाहुति हुई।

— इसप्रकार आत्मार्थीजनों को आनंदकारी ऐसा यह मंगलमय उत्सव सुवर्णपुरी में जय-जयकार पूर्वक मनाया गया।

[प्रेषक—ब्रह्मचारी चन्दूलाल खी. झोबालिया]

मंगलकारी 'तेज' दुलारी

[पूज्य बहिनश्री चंपाबेन के जन्मोत्सव का मंगल-गीत]

मंगलकारी *'तेज' दुलारी पावन मंगल मंगल है,
मंगल तव चरणों से मंडित अवनी आज सुमंगल है... मंगलकारी०

+श्रावण दूर सुमंगल उत्तम, ×वीरपुरी अति मंगल है,
मंगल मातपिता, कुल मंगल, मंगल धाम रु आंगन है;
मंगल जन्ममोहत्सव का यह अवसर अनुपम मंगल है... मंगलकारी०

मंगल शिशुलीला अति उज्ज्वल, मीठे बोल सुमंगल हैं,
शिशुवय का वैराग्य सुमंगल, आतम-मंथन मंगल है;
आतमलक्ष लगाकर पाया, अनुभव श्रेष्ठ सुमंगल है... मंगलकारी०

सागर सम गंभीर मति-श्रुत ज्ञान सुनिर्मल मंगल है,
समवसरण में कुन्द प्रभु का दर्शन मनहर मंगल है;
सीमंधर-गणधर-जिनधुनि का स्मरण मधुरतम मंगल है... मंगलकारी०

शशि-शीतल मुद्रा अति मंगल, निर्मल नैन सुमंगल हैं,
आसन-गमनादिक कुछ भी हो, शांत सुधीर सुमंगल है;
प्रवचन मंगल, भक्ति सुमंगल, ध्यानदशा अति मंगल है... मंगलकारी०

दिन दिन वृद्धिमती निज परिणति वचनातीत सुमंगल है,
मंगलमूरति-मंगलपद में मंगल-अर्थ सुवंदन है;
आशिष मंगल याचत बालक, मंगल अनुग्रहदृष्टि रहे,
तब गुण को आदर्श बनाकर, हम सब मंगलमय लहें॥ मंगलकारी०

** पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन की माता का शुभ नाम 'तेजबा' था।*

+ पूज्य बहिनश्री का जन्मदिन भाद्रपद कृष्णा (गुजराती श्रावण कृष्णा) दोज है।

× पूज्य बहिनश्री का जन्मस्थान वर्धमानपुरी (वढवाण शहर) है।

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : ब्र० हरिलाल जैन 卐 सह-संपादक : ब्र० गुलाबचंद जैन

अगस्त : 1973 ☆ श्रावण : वीर नि० सं० 2499, वर्ष 29 वाँ ☆ अंक : 4

साध्य की सिद्धि

प्रत्येक आत्मा ज्ञानस्वरूप है; उस ज्ञानस्वरूप आत्मा का ज्ञानरूप अनुभव न करके रागादिरूप या जड़रूप मानकर ज्ञान को भूल जाता है, इसलिये अज्ञानी को शुद्ध आत्मा की सिद्धि नहीं होती, वह तो अशुद्ध आत्मा का ही अनुभव करता है। अनेक भावों का (ज्ञान, राग और संयोगों का) मिश्रपना होने पर भी उसमें जो ज्ञानरूप से अनुभव में आता है, वही हूँ मैं और इसके अतिरिक्त अन्य भाव वह मैं नहीं हूँ—इसप्रकार भेदज्ञान में प्रवीण होकर निःशंकरूप से अन्य समस्त भावों से भिन्न शुद्धज्ञानस्वरूप ही अपना अनुभव करता है, तभी उसमें एकाग्र होकर आत्मा अपनी शुद्धता को साधता है।—इसप्रकार साध्य की सिद्धि होती है।

मोक्ष के कारणरूप भेदज्ञान

उस भेदज्ञान में आनंद का रस झरता है

[समयसार—मोक्ष अधिकार के प्रवचनों से]

ज्ञान और राग को सर्वथा भिन्नपना है। ज्ञानलक्षण के द्वारा रागादि से भिन्न शुद्धआत्मा का अनुभव करना—वह मोक्ष का साधन है।

मोक्ष अधिकार के मंगलाचरण में प्रथम तो कृतकृत्य ज्ञान को विजयवंत कहा है... उस ज्ञान ने आत्मा को बँधन से छुड़ाकर मुक्त किया है, और वह सहज परम आनंद से परिपूर्ण सुंदर है। ज्ञान का वीतरागी आनंदरस ही सच्चा रस है, और रागादि तो आकुलतामय नीरस हैं। रागादि बंध और ज्ञानरूप आत्मा को अलग करनेवाला ज्ञान ही मोक्ष का सच्चा साधन है। अन्य किसी से मोक्ष प्राप्त नहीं होता। भेदज्ञानरूपी प्रज्ञा द्वारा ज्ञान और राग की भिन्नता का बारंबार अभ्यास कर-करके जहाँ ज्ञान राग से भिन्न होकर अंतर्मुख स्वभाव की ओर उन्मुख हुआ, वहाँ शुद्धआत्मा की अनुभूति में राग का वेदन नहीं रहा—इसका नाम भेदज्ञान है, यही प्रज्ञाछैनी और यही मोक्ष का साधन है।

मात्र बंधन के ही विचार करता रहे, कर्म के अनेक प्रकारों को जानता रहे, परंतु यदि ज्ञान को आत्मस्वभावोन्मुख करके बंध से पृथक् न हो, तो उस जीव को मोक्ष का उपाय नहीं होता। शुभभाव से अन्य विकल्प छोड़कर, कर्मबंध से छूटने के विचार में चित्त को लगाता रहे और उससे मोक्ष हो जायेगा—ऐसा माने, तो कहते हैं कि भाई! तेरा बंधन रहित ज्ञानस्वरूप आत्मा कैसा है, उसे जाने बिना तेरा बंधन से छुटकारा नहीं होगा। कर्म का विचार कर-करके ज्ञान को तो तूने राग में ही रोग दिया है, इसलिये शुभराग को मोक्ष का साधन मानकर तेरी बुद्धि अंध हो गई है; मात्र बंधन के शुभ विचार से मुक्ति नहीं होती किंतु बंधन को छेदने से मुक्ति होती है।

बंधन का छेद कैसे होता है? तो कहते हैं कि ज्ञान को उससे भिन्न जानने पर वह छिद जाता है—दोनों भिन्न हो जाते हैं। निराकुल चैतन्यस्वादरूप ज्ञान तो मैं हूँ और रागादि आकुल

स्वादरूप बंध मैं नहीं हूँ, दोनों का स्वरूप अत्यंत भिन्न है।—इसप्रकार ज्ञान का और बंधन का दोनों का भिन्न-भिन्न स्वभाव जानकर भेदज्ञान करते ही प्रज्ञाछैनी इतने जोर से गिरती है कि ज्ञानस्वरूप शुद्धात्मा में स्वयं तन्मय होती है और सर्व बंधभावों को चेतनस्वभाव से बाहर अज्ञानभाव में रखती है। रागादिभावों को ज्ञानपना नहीं है, इसलिये उन्हें अज्ञानमयभाव कहा है। एक ओर ज्ञानमय आत्मा और दूसरी ओर ज्ञानमयभाव से भिन्न समस्त अज्ञानमयभाव—वे आत्मा से बिलकुल भिन्न; ऐसा भेदज्ञान करके बंधन से भिन्न चैतन्यस्वभावरूप आत्मा का अनुभवन करना, वही मोक्ष का कारण है। भगवान ने ऐसा मोक्ष का मार्ग कहा है।—

'ऐसा मार्ग वीतराग का, भाख्या श्री भगवान।'

आत्मा का स्वलक्षण चैतन्य है; गुण-पर्याय में व्याप्त होनेवाले जितने चैतन्यभाव हैं, उतना ही आत्मा है। जिसमें चैतन्यभाव नहीं, वह आत्मा नहीं; रागादि भावों में चैतन्यपना नहीं है, वे तो चैतन्य से भिन्नरूप चेत्य हैं। आत्मा चेतक है, उससे भिन्नरूप रागादिभाव चेत्य है। ज्ञान में और राग में चेतक-चेत्यपना है किंतु उनमें एकपना नहीं है, कर्ता-कर्मपना नहीं है। दोनों की जाति ही बिलकुल भिन्न है। जिसप्रकार चेतन और जड़ में एक जातिपना नहीं है, बिलकुल भिन्नपना है, उसीप्रकार ज्ञान में और राग में भी एक स्वभावपना नहीं है, दोनों का स्वभाव बिलकुल भिन्न-भिन्न है। ऐसा भिन्नपना जानकर ज्ञानपर्याय ने ज्ञान में तन्मय होकर अपना ज्ञानस्वभावरूप अनुभव किया और राग से पृथक् हुई, वही मोक्ष का कारण है। अज्ञान से पर्याय ने रागादि में तन्मयपना माना था, तब वह पर्याय अंतर स्वभाव से विमुख होकर परिणमन करती थी, वह संसार था; और जहाँ रागादि से भिन्नता जानकर अंतर में ज्ञानस्वभावरूप से आत्मा को अनुभव में लिया, वहाँ द्रव्य-पर्याय एक-दूसरे के सन्मुख हुए; ज्ञानपर्याय अंतर में एकाग्र होकर परिणमित हुई तथा राग से सर्वथा छूट गई, वह मोक्ष का कारण है; अथवा उस ज्ञानपर्याय में बंधन नहीं है, इसलिये वह मुक्त ही है। वहाँ जो राग और बंधन है, वह कहीं ज्ञानपर्याय में नहीं है; ज्ञानधारा तो उससे पृथक्-मुक्त ही है। अहो, ऐसी ज्ञानधारा सहज परम आनंदरस में निमग्न है। एक बार भेदज्ञान करके ज्ञान का स्वाद चख!

अरे, राग में तो चैतन्यपना ही नहीं है, तो वह मोक्ष का साधन कैसे होगा? राग का अनुभव, वह तो बंध का अनुभव है, उसमें मोक्ष का स्वाद कहाँ से आयेगा? राग से भिन्न ऐसा जो

चैतन्यस्वाद है, उस चैतन्यस्वाद में मोक्ष का स्वाद है। इसप्रकार राग और चैतन्य दोनों के स्वाद को सर्वथा भिन्न जानकर, चैतन्यस्वादरूप से अपने को अनुभव में लेकर ज्ञान एकाग्र हुआ, वहाँ वह बंधभावों से पृथक् हो गया;—ऐसा ज्ञान ही मोक्ष का साधन है, अन्य कोई मोक्ष का साधन है ही नहीं। साध्य और साधन समान जाति के होते हैं, भिन्न जाति के नहीं होते। ज्ञान और राग कहीं एक जाति के नहीं हैं, इसलिये राग, वह भेदज्ञान का या मोक्ष का साधन नहीं हो सकता।

ज्ञान को और रागादि को अत्यंत भिन्नपना है; उनमें चेतक और चेत्यपना होने पर भी एकपना नहीं है। 'यह राग है'—इसप्रकार उस राग को ज्ञान चेतना है—जानता है, वहाँ वह ज्ञान कहीं अपने को रागरूप से प्रसिद्ध नहीं करता, परंतु अपने को राग से भिन्न चेतकरूप से प्रसिद्ध करता है। राग को जानते हुए ज्ञान कहीं राग में एकमेक नहीं हो जाता। चेतक आत्मा का व्याप्य तो ज्ञानचेतना है; रागादिभाव कहीं चेतक का व्याप्य नहीं है। ज्ञान का स्वभाव तो रागरहित है, रागरहित आत्मलाभ हो सकता है, अर्थात् रागरहित आत्मा अनुभव में आ सकता है क्योंकि राग से भिन्न चेतनस्वभावी आत्मा चैतन्य के बिना कभी नहीं रह सकता; ज्ञान रहित आत्मा अनुभव में नहीं आ सकता। इसप्रकार ज्ञानलक्षण द्वारा सर्वप्रकार से राग और ज्ञान का अत्यंत भिन्न अनुभव करना, वह अरिहंतदेव का आदेश है, वही भव समुद्र के किनारे आने की नौका है।

अरे भाई! तू तो चैतन्य है; तेरे सर्व गुण-पर्यायों में चैतन्यपना व्याप्त है, वही तू है। राग कहीं चैतन्य में व्याप्त नहीं होता, वह चैतन्य से भिन्न परज्ञेयरूप से ज्ञान में ज्ञात होता है। ज्ञेयरूप से भले वह निकट हो, क्षेत्र से भले निकट हो परंतु भाव से तो उस राग का ज्ञान से बिलकुल भिन्नत्व है; इसलिये ज्ञान और राग का प्रज्ञाछैनी द्वारा सर्वथा ही छेदन करना। राग के किसी अंश को ज्ञान में किंचित् एकाकार नहीं करना। राग से भिन्न मात्र चैतन्यस्वादरूप से आत्मा का अनुभव करना और रागादि सर्व बंधभावों को भिन्न रखना—ऐसा भेदज्ञान, वह मोक्ष का कारण है।

अहा, ज्ञान और राग की भिन्नता तो देखो! आचार्यदेव कहते हैं कि ज्ञान और राग का अत्यंत भिन्नपना हमने जान लिया है, प्रज्ञाछैनी द्वारा ज्ञान और राग का हमने सर्वथा भिन्न अनुभव किया है। (बुध्येमहि), अपने ऐसे अनुभवपूर्वक तुमसे कहते हैं कि प्रज्ञाछैनी द्वारा ज्ञान और राग को सर्वथा भिन्न जानो। ज्ञान और राग का कहीं एकस्वभावपना नहीं है, दोनों के

बीच साँध है—दरार है—लक्षणभेद है, उसे जानकर प्रज्ञाछैनी द्वारा उन्हें पृथक् किया जा सकता है अर्थात् अंतर्मुख प्रज्ञा द्वारा राग से भिन्न ज्ञान का अनुभव किया जा सकता है। ऐसा अनुभव ही बंध से छूटने एवं मोक्ष प्राप्त करने का उपाय है।

अरे, भेदज्ञान की ऐसी बात कानों में पड़ने पर भी, उसे सुनकर जो अंतर में यथार्थ अनुभव का प्रयोग नहीं करता वह तो बहरा है। अंदर ज्ञान में प्रयोग नहीं किया तो सुना किस काम का? भाई, तू तो चैतन्यदीपक है, दीपक तो प्रकाशस्वरूप है, उसके प्रकाश में कोई मलिनवस्तु ज्ञात हो तो कहीं दीपक मैला नहीं है, दीपक तो प्रकाशस्वभावी दीपक ही है। उसीप्रकार चैतन्यदीपक आत्मा है, वह तो प्रकाशस्वरूप ही है, उसके ज्ञानप्रकाश में कोई रागादि बंधभाव ज्ञेयरूप से ज्ञात हों तो उससे कहीं ज्ञान स्वयं रागादिरूप मलिन नहीं हो जाता; ज्ञानदीपक तो ज्ञानस्वरूप ही है। ज्ञान का स्वाद तो राग से भिन्न जाति का चैतन्यमय है; ज्ञान के ऐसे भिन्न स्वाद द्वारा आत्मा का रागादि से अत्यंत भिन्न अनुभव करना, उसका नाम भगवती प्रज्ञा है, वही मोक्ष का साधन है।

राग, ज्ञान में ज्ञेयरूप से ज्ञात होता है, तब उस राग को जाननेवाला ज्ञान ही आत्मा का लक्षण है; कहीं राग, आत्मा का लक्षण नहीं है। राग को और ज्ञान को चेत्य-चेतकपना है, वह तो आत्मा को ज्ञानस्वभावरूप घोषित करता है कि—यह जो ज्ञातास्वभाव है, सो आत्मा है; परंतु वह कहीं ऐसा घोषित नहीं करता कि यह जो राग है, सो आत्मा का स्व-स्वभाव है। राग को तो वह ज्ञान से भिन्नरूप घोषित करता है। ज्ञान और राग की ऐसी भिन्नता को जानना, वह सच्ची तीक्ष्णबुद्धि है; बाकी सब ज्ञातृत्व कोरा है। अरे, एकबार तो प्रज्ञा को अंतर्मुख करके राग से भिन्न ज्ञान का स्वाद ले। तेरा ज्ञान तुझे सर्व बंधभावों से पृथक् अनुभव में आयेगा।

राग के समय ज्ञान उस राग को जानता है, वहाँ धर्मी को ऐसा संदेह नहीं है कि मेरा ज्ञान इस रागरूप हो गया। धर्मी तो निःसंदेह अपने को राग से भिन्न ज्ञानरूप ही अनुभव करता है, इसलिये राग को प्रकाशित करते हुए जो अपने को ज्ञानरूप ही प्रकाशित करता है—रागरूप नहीं; ज्ञान में और राग में एकपना किंचित् भी प्रतिभासित नहीं होता, सर्वथा भिन्नपना ही भासता है। इसका नाम भेदज्ञान; यह धर्म है और यही मोक्ष का साधन है।

आत्मा के मोक्ष का साधन आत्मा से भिन्न नहीं होता; आत्मा से अभिन्न ही होता है।

प्रज्ञाछैनी अर्थात् अंतर्मुख होकर आत्मा को अनुभवनेवाला ज्ञान, वही आत्मा को बंध से भिन्न करने का साधन है; इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी साधन का निश्चय से अभाव है, अर्थात् ज्ञान के अनुभव से भिन्न अन्य कोई मोक्ष का साधन है ही नहीं।

रागादि में वर्तता हुआ अज्ञान, वह तो स्थूल है, उसमें बंध को छेदने की शक्ति नहीं है। राग से भिन्न चैतन्य में वर्तता हुआ ज्ञान, वह अत्यंत सूक्ष्म है, वह बंधन को आत्मा से सर्वथा भिन्न कर डालता है; स्वयं रागादि बंधभावों से पृथक् होकर आत्मा के ज्ञानस्वभाव में एकाग्र होता है।—ऐसी ज्ञानधारारूप भगवती प्रज्ञा, वह स्वयं आनंदमय है तथा वही मोक्ष का साधन है।

परमागम का मधुर प्रसाद

स्वानुभूति के अंतर में से प्राप्त चैतन्यस्पर्शी न्याय...
उनके वाच्य को लक्षगत करने से अमृतसागर उछलता है

[पूज्य स्वामीजी के प्रवचन से]

❀ आत्मा के परमस्वभाव का अवलंबन करने से समस्त परभाव छूट जाते हैं। आत्मा के अवलंबनरूप जो ध्यान है, वह सर्व परभावों के अभावरूप होने से सर्वस्व है, इसलिये उस ध्यान में सामायिक, प्रतिक्रमणादि सर्व धर्मों का समावेश होता है।

❀ आत्मा के परमस्वभाव के अवलंबन बिना परभाव का त्याग नहीं हो सकता। आनंदमूर्ति आत्मा में एकाग्र होने पर जो शुद्धता प्रगट हुई, उसमें परमार्थ व्रत-तप आदि समस्त आचारों का समावेश हो जाता है।

❀ अहा, चैतन्यवस्तु किसे कहा जाये? अनंत स्वभाव से परिपूर्ण आत्मा, जिसका अवलंबन करने से कोई भी परभाव न रहे और अनंत गुण निर्मलभाव का परिणमित हों—ऐसा महा पदार्थ आत्मा है। उसमें स्वसन्मुख हुई पर्याय में अनंत धर्मों का समावेश है।

❀ अपने परमभाव से परिपूर्ण निजतत्त्व को जानकर उसका अवलंबन लेना, वह अपूर्व धर्म है। जीव ने पहले कभी अपने निजतत्त्व का अवलंबन नहीं लिया था; पर के अवलंबन में शुभ-अशुभ परभाव ही किये थे; उन परभावों में कहीं धर्म या शांति नहीं है। आसन्नभव्य जीव अंतर्मुख होकर अपने परमतत्त्व को ध्याता है—उसमें मग्न होता है—उसे स्व के अवलंबन से शुद्धता होने पर अल्पकाल में मोक्षदशा प्रगट होती है।

❀ तुझे सम्यक्त्वादि क्षायिकभाव प्रगट करना हो, उपशमभाव प्रगट करना हो, तो अंतर में अपने परमस्वभाव को लक्ष में लेकर उसमें पर्याय को एकाग्र कर। भेद के, पर्याय के अवलंबन से कहीं शुद्धता नहीं होती। अभेद स्वभाव के अवलंबनरूप ध्यान में सर्व धर्मों का समावेश है।

❀ अहा, अपना उत्कृष्ट स्वभावी परम आत्मतत्त्व, वह स्वद्रव्य है। उस स्वद्रव्य की अचिंत्य महिमा को जानने पर किसी परद्रव्य के अवलंबन की बुद्धि नहीं रहती। किसी भी परद्रव्य के अवलंबन द्वारा शुभ-अशुभराग हो—वह परभाव है; इसलिये परद्रव्य का अवलंबन छोड़कर अपने ज्ञानानंदरूप परम स्वभाव का अवलंबन करना ही भगवान वीतरागदेव का मार्ग है। ऐसे वीतरागमार्ग में तो स्वयं में भी ज्ञानादि के भेद का अवलंबन भी छोड़ने योग्य है, वहाँ पर के अवलंबन की तो क्या बात? अकेले स्वद्रव्य के अवलंबन के अतिरिक्त अन्य किसी मार्ग से मुक्ति नहीं है... नहीं है।

❀ पर-सन्मुख पर्याय द्वारा स्वद्रव्य की शुद्धता जानने में नहीं आती और वह पर्याय स्वयं भी शुद्ध नहीं होती। जो पर्याय अंतर्मुख होकर ज्ञायकस्वभाव की सेवा करती है—अनुभव करती है, वही शुद्धपर्याय जानती है कि आत्मद्रव्य ऐसा शुद्ध है। इसप्रकार उपासना द्वारा आत्मा की शुद्धता को जाने, तब आत्मा स्वयं शुद्धतारूप परिणमित होता है, और उसे 'शुद्ध' कहा जाता है। वहाँ भावश्रुतपर्याय अभेद हो गई है; उसमें कोई भेद-विकल्प नहीं है।

❀ भेदरहित भावश्रुतज्ञान ही शुद्धात्मज्ञान का स्वरूप है। ज्ञातापनेरूप ही अपने को अनुभवनेवाला ज्ञान; ज्ञाता से भिन्न अन्य किसी भी भाव का अपनेरूप वेदन नहीं करता। अन्य कोई भाव ज्ञानरूप अनुभव में आये—ऐसी योग्यता ही उसमें नहीं है।

❀ जो ज्ञानस्वभाव में गई है, उसी पर्याय में स्वभाव की महिमा आयी है। आत्मा स्वयं उस समय भावश्रुतपर्यायरूप परिणमित हुआ है। आत्मा स्वयं कर्ता होकर उसे करता है। भावश्रुत के परिणमन में तो अनंत गुण की शुद्धता साथ है, उसमें कोई विकल्प नहीं है—भेद नहीं है—ऐसी दशा को अनुभूति कहो, भावश्रुत कहो, शुद्धात्मज्ञान कहो, ज्ञायकभाव की उपासना कहो।

❀ समयसार, गाथा 6-7-11-13-31-38-144 आदि अनेक गाथाओं में यही बात भिन्न-भिन्न प्रकार से भरी है। इसके वाच्य बहुत गहरे हैं। इन वाच्यों का अनुभव होना चाहिए। अहा, उनकी गंभीरता और महिमा का पार नहीं है, अनुभव से ही उनका पार पाया जा सकता है। समयसार तो समयसार है, उसमें भरे हुए अमृत के सागर को भी अमृतचंद्रदेव ने उल्लसित किया है।

❀ भावश्रुतज्ञान ही उसे कहा जाता है, जो ज्ञान शुद्धात्मा को जाने। उस भावश्रुत में समस्त द्रव्यश्रुत के वाच्य का समावेश है, क्योंकि समस्त श्रुत का सार तो शुद्धात्मा है। जिस ज्ञान में शुद्धात्मा का चलन चलता है, शुद्धात्मसन्मुख होकर उसे जो ज्ञान वेदता है, वह ज्ञान रागादि भावों से भिन्न ही रहता हुआ उन्हें परभावरूप जानता है। जितना कर्मफल का वेदन है, उसे भी ज्ञान जानता है, परंतु ज्ञान उस वेदन में तन्मय नहीं होता। ज्ञान स्वयं शांति में तन्मय रहकर; रागादि कषायों को दु:खरूप जानता है। जितना राग है, वह तो ज्ञानी को भी दु:खरूप ही है; उस समय राग से भिन्न जो ज्ञान शुद्धात्मा को जानता हुआ वर्तता है, उस ज्ञान में आनंद की लीला है, उसमें दु:ख नहीं है, वह दु:ख का वेदन नहीं करता।—इसप्रकार दोनों धाराएँ भिन्न-भिन्न वर्तती हैं, उन्हें यथावत् जानना योग्य है।

❀ जो भावश्रुतज्ञान शुद्धात्मा को स्वयं अपने रूप जानता है, वह रागादि भावों को अपने स्वरूप क्यों जानेगा? आनंदकंद ऐसा चैतन्यहीरा जहाँ हाथ में आया, वहाँ रागादि मलिनभावों को कौन पकड़ेगा? निर्विकारी भाव में विकार का वेदन क्यों होगा? निर्विकारी ज्ञान में विकार के वेदन की अयोग्यता है। चैतन्य के मधुररस में कर्म का रस कैसा? चैतन्य-सन्मुख होकर उसे जाननेवाला ज्ञान तो चैतन्यरस का ही वेदन करता है, वह राग के रस का वेदन नहीं करता। राग के समय शुद्धात्मज्ञान जीवंत है, ज्ञान का अस्तित्व है—उस ज्ञान की अपेक्षा से तो ज्ञानी मुक्त ही है... उसकी पर्याय मिथ्यात्व रागादि भावों से भिन्न है, इसलिये वह मुक्त ही है। [देखो, समयसार कलश 198]

❀ अहा, पंचमकाल में भी वीतरागी अमृत की सरिता प्रवाहित है। भगवान ने जो उपदेश दिया, उसे झेलकर श्री कुन्दकुन्दस्वामी ने भरतक्षेत्र में उसे प्रवाहित किया है... वह प्रवाह वर्तमान में भी चल रहा है। अहो, उसकी महिमा का क्या कहना?

बंध को छेदनेवाली प्रज्ञा छैनी

प्रज्ञा छैनी द्वारा आत्मा और बंध पृथक् कैसे हो सकते हैं ?—तो कहते हैं कि—उन दोनों का स्वभाव एक नहीं है किंतु भिन्न ही हैं; इसलिये भिन्न-भिन्न लक्षणों द्वारा उन्हें पृथक् जानकर पृथक् किया जा सकता है।—ऐसा हम जानते हैं। सूक्ष्म ज्ञान द्वारा, अंतर्मुख स्वसंवेदनज्ञान द्वारा राग से भिन्न ज्ञानस्वादरूप से आत्मा अनुभव में आता है। आचार्यदेव कहते हैं कि—ऐसा अनुभव हमने किया है। भिन्नपना हो सकता है, वह तुझसे कहते हैं। ज्ञान और राग के बीच महान लक्षणभेद है, बड़ी साँध है; इसलिये सूक्ष्म ज्ञान द्वारा उन्हें भिन्न जाना जा सकता है। ज्ञान और राग की एकता नहीं है परंतु स्वभाव से भिन्नता है, वे दोनों एकमेक नहीं हैं, उन दोनों के बीच साँध है-दरार है, इसलिये उनकी भिन्नता का अनुभव सूक्ष्म ज्ञान द्वारा हो सकता है। अहो! ऐसा अंतर का भेदज्ञान तो भगवान जिनेश्वरदेव के मार्ग में ही है। अंतर में ऐसा भेदज्ञान करे, तब सम्यग्दर्शन होता है; पश्चात् मुनिपना और केवलज्ञान तो बड़ी ऊँची वस्तु है। भाई, एकबार ऐसा भेदज्ञान करके अपने आत्मा को ज्ञान-लक्षण द्वारा सर्व बंधन से भिन्न जान... तो अल्पकाल में तेरा बंधन से छुटकारा हो जायेगा।

चैतन्यभाव और रागादिभाव—दोनों के स्वभाव को भिन्न जानने पर, ज्ञान अंतर में चैतन्य-स्वभाव के साथ ही तन्मय होकर परिणमित हुआ अर्थात् वह राग से सर्वथा भिन्न परिणति हुआ, उसका नाम भेदज्ञान है; और यही बंध को छेदनेवाली प्रज्ञा छैनी है।

सच्ची समाधि

धर्मी जीव जानता है कि शरीर, संयोग सब मुझसे भिन्न हैं, वे सब यहीं पड़े रहेंगे, मेरे साथ एक डग भी चलनेवाले नहीं; अपने श्रद्धा-ज्ञान-आनंद ही सदा साथ रहनेवाले हैं;—ऐसे अनुभवपूर्वक धर्मी श्रद्धा-ज्ञान को साथ लेकर जाता है; इसी का नाम समाधिमरण अथवा सच्ची समाधि है।

सम्यग्ज्ञान की महिमा

उस ज्ञान का महान फल; उसके बिना सब निष्फल

जीव को परमसुख का कारण सम्यग्ज्ञान है, उसकी महिमा बतलाते हैं और उसका उत्तम फल बतलाकर उसकी आराधना का उत्साह जागृत करते हैं :—

ज्ञानसमान न आन जगत में सुख को कारन।
यह परमामृत जन्म-जरा-मृति रोग निवारन॥
कोटि जनम तप तपें ज्ञान बिन कर्म झरें जे।
ज्ञानी के छिन में त्रिगुप्तितें सहज टरें ते॥
मुनिव्रत धार अनंत बार ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतम-ज्ञान बिना सुख लेश न पायो॥

जगत में जीव को सम्यग्ज्ञान के समान सुख का कारण अन्य कोई नहीं है, पुण्य या पाप का भाव सुख का कारण नहीं, बाह्य वैभव सुख का कारण नहीं है; अंतर में चैतन्य का ज्ञानपरिणमन ही जीव को सर्वत्र सुख का कारण है। जन्म-जरा-मरण के रोग को मिटाने के लिये यह सम्यग्ज्ञान परम अमृत है। सम्यग्ज्ञानरूपी अमृत द्वारा जन्म-मरण का नाश करके जीव अमरपद को प्राप्त होता है।

सम्यग्ज्ञान के बिना करोड़ों जन्म तक तप तपने से अज्ञानी को जितने कर्मों की निर्जरा होती है, उतने कर्मों की निर्जरा ज्ञानी की त्रिगुप्ति द्वारा एक क्षण में सहज ही हो जाती है। सम्यग्ज्ञान के प्रताप से मन-वचन-काय से भिन्न सदा चैतन्यपरिणति वर्तती है, जिससे उसे सहज ही निर्जरा होती रहती है, ऐसी निर्जरा अज्ञानी को बहुत तप करने पर भी नहीं होती। अज्ञानी जीव अनंतबार मुनिव्रत धारण करके नववीं ग्रैवेयक तक गया, परंतु आत्मज्ञान के बिना

उसे लेशमात्र भी सुख प्राप्त नहीं हुआ। देखो तो सही, अज्ञानी के पंच महाव्रत भी किंचित्मात्र सुख का कारण नहीं हुए!—कहाँ से हों? वह तो शुभराग है। राग कहीं सुख का कारण हो सकता है? राग के फल में तो बाह्य संयोग प्राप्त होते हैं और अंतर में आकुलता होती है, परंतु राग से कहीं चैतन्य की शांति नहीं मिलती; वह तो चैतन्यज्ञान से ही प्राप्त होती है।

अंतर में राग से पार आत्मा के शुद्धस्वरूप का यथार्थ ज्ञान हुआ, वह सम्यग्ज्ञान है; वहाँ बाह्य की विशेष जानकारी हो या न हो, शास्त्रज्ञान अल्प हो या अधिक हो, उसके साथ संबंध नहीं है; आत्मा को जाननेवाला सम्यग्ज्ञान स्वयं ही सुख का कारण है। आत्मा के अतीन्द्रियसुख के अनुभवसहित ही सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ है और वह स्वयं ही परम सुख से भरपूर है। आत्मा में ज्ञान के परिणमन के साथ सुख का परिणमन भी साथ ही है। सम्यग्ज्ञान में तो चैतन्य के अनंत भाव भरे हुए हैं। अहा, सम्यग्ज्ञान का मूल्य जगत को मालूम नहीं है। सम्यग्ज्ञान के समान सुखकारी तीन काल-तीन लोक में दूसरा कोई नहीं है। प्रथम सम्यग्दर्शन के प्रकरण में कहा है कि —

'तीन लोक तिहुँकाल माहिं नहीं दर्शन सो सुखकारी'

यहाँ सम्यग्ज्ञान के लिये कहा है कि—

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारन।

देखो तो, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की परम महिमा! उसे परम हितरूप जानकर हे भव्य जीवो! उसकी आराधना करो।

आत्मा के सम्यग्ज्ञान में सर्व समाधान और परम सुख है, सर्व सांसारिक दुःखों के विष को उतारने के लिये वह उत्कृष्ट अमृत है। सुख की खोज अन्यत्र कहीं मत कर! अंतर्मुख होकर अपने आत्मा का सम्यग्ज्ञान कर। आनंद की उत्पत्ति तेरे सम्यग्ज्ञान में है; कुटुम्ब, पैसा या शरीर में कहीं आनंद प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। आत्मा के सम्यग्ज्ञान बिना देवलोक के देव भी दुःखी हैं, वहाँ दूसरों की क्या बात? शुभराग, पुण्य और उसका फल-यह सब आत्मज्ञान से भिन्न हैं; उस राग में, पुण्य में या पुण्यफल में जो सुख मानते हैं, उन्हें सच्चे ज्ञान की या सच्चे सुख की खबर नहीं है, ज्ञान और सुख के बहाने वे अज्ञान तथा दुःख का ही सेवन करते हैं। भाई! सुख और ज्ञान तो तेरा स्वभाव है; उसे पहिचान, तो सम्यग्ज्ञान और अतीन्द्रिय सुख का अनुभव हो।

अतीन्द्रिय ज्ञान में जो सुख है, वैसा सुख इंद्रपद में नहीं है, चक्रवर्तीपद में नहीं है, या जगत में अन्यत्र कहीं नहीं है, अर्थात् ज्ञान के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं सुख है ही नहीं। सम्यग्ज्ञान में सुख है और अन्यत्र कहीं सुख नहीं है; इस अपेक्षा से केवली भगवंतों को एकांत सुखी कहा है।

अहा, सम्यग्ज्ञान तो परम अमृत है। 'अमृत' अर्थात् मरण रहित ऐसा मोक्षपद, वह सम्यग्ज्ञान द्वारा प्राप्त होता है; इसलिये सम्यग्ज्ञान, वह परम अमृत है; वह जन्म-जरा-मरण के रोग को मिटाकर मोक्षरूपी अमरपद प्रदान करनेवाला है। लौकिक पढ़ाई या सांसारिक चतुराई जिसमें काम नहीं आते, आत्मा से जो प्रगट होता है।—ऐसा यह सम्यग्ज्ञान परम अमृत है। आत्मा का स्वभाव अनाकुल आनंदस्वरूप अमृत है, उसमें तन्मय होकर उसे जाननेवाला ज्ञान भी आनंदरूप हुआ है, इसलिये वह भी परम अमृत है, और ऐसे स्वरूप को दिखानेवाली वाणी को भी उपचार से अमृत कहा जाता है।—'वचनामृत वीतरागनां... परम शांतरस मूल'—ऐसी वीतरागवाणी द्वारा होनेवाला आत्मा का सम्यग्ज्ञान, वह जीव के भवरोग को मिटाने की अमोघ औषधि है। शरीर में भले ही वृद्धावस्था हो, या बाल्यावस्था हो, नरक में हो या स्वर्ग में हो... रोग हो या निरोगता हो लेकिन ऐसा सम्यग्ज्ञान सर्वत्र परम शांति प्रदान करनेवाला है।

आत्मा का ज्ञान है, वह आनंद सहित है। जिसमें आनंद नहीं, वह ज्ञान नहीं है। जो दुःख का कारण हो, उसे ज्ञान कौन कहेगा?—वह तो अज्ञान है। ज्ञान तो तीनकाल-तीनलोक में अपूर्व सुख का ही कारण होता है, वह परम अमृत है। ऐसा ज्ञान ही जन्म-मरण से छूटकर मुक्तिसुख प्राप्त करने का उपाय है; ज्ञान के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। जो जीव पूर्वकाल में सिद्ध हुए हैं, वर्तमान में होते हैं और भविष्य में होंगे, वे सब जीव भेदज्ञान के द्वारा ही सिद्ध हुए हैं, होते हैं और होंगे—ऐसा जानो।

भेदज्ञान संवर जिन्ह पायो, सो चेतन शिवरूप कहायो।
भेदज्ञान जिन्ह के घट नांहीं, ते जड़ जीव बंधैं घट मांहीं॥

—ऐसा मानकर हे जीव! तू अच्छिन्न धारा से भेदज्ञान की भावना कर; रागादि से भिन्न शुद्ध आत्मा को जानकर उसकी निरंतर भावना कर! भेदज्ञानी जीव सदा आत्मानंद में केलि करते हैं। आत्मा के आनंद में केलि करते-करते वे मुक्ति में जाते हैं।

अहो, मैं तो परम आनंदस्वरूप हूँ, जगत से भिन्न और अपने से परिपूर्ण हूँ, सिद्ध

भगवान जैसा मेरा चैतन्यपद है, इस प्रकार जिस ज्ञान ने आत्मा का मूल्यांकन किया, उस ज्ञान में अपूर्व ज्ञानकला प्रगट हुई, उसके द्वारा अब वह शिवमार्ग को साधता है, और शरीर में वास छोड़कर वह सिद्धपद को प्राप्त होता है। भेदज्ञान-कला द्वारा धर्मी जीव ऐसा अनुभव करता है कि 'चेतनरूप अनूप अमूरत सिद्ध समान सदा पद मेरौ'(अपने वेदन से वह निःशंक जानता है कि 'ज्ञानकला उपजी अब मोहे' मुझे ज्ञानकला प्रगट हुई है और उसके प्रसाद से मैं मोक्षमार्ग को साध रहा हूँ, अल्पकाल में इस भव से छूटकर अब मैं सिद्धपद को प्राप्त करूँगा।

— ऐसे आत्मज्ञान की अपार महिमा और अपार मूल्य भासित होना चाहिए... अरे, अनंत चैतन्यगुणों में निवास करनेवाला मैं, इस मिट्टी के घर में ममता करके रहना मुझे कैसे शोभा देगा? देह मैं नहीं हूँ, मैं तो देह से भिन्न ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ।—ऐसा सम्यग्ज्ञान होने पर अब ज्ञानकला जागृत हुई है, उस ज्ञानकला के प्रसाद से अब इस मिट्टी के घर से छूटकर अशरीरी होकर, सिद्धालय में रहूँगा, फिर कभी इस शरीर में या संसार में नहीं आऊँगा। देखो, यह सम्यग्ज्ञान का प्रसाद! ऐसे ज्ञान के प्रसाद से मुक्ति प्राप्त होती है। सम्यग्ज्ञान के प्रताप से अब इस हाड़-माँस के पिंजरे में रहना छूट जायेगा और आनंदमय मोक्षमहल में सदा रहेंगे।—इसप्रकार सम्यग्ज्ञान के अमृत द्वारा जन्म-मरण का रोग मिटता है और परमसुख की प्राप्ति होती है। जगत में जीवों को इस ज्ञान के समान अन्य कोई सुख का कारण नहीं है।—इसप्रकार सम्यग्ज्ञान की महिमा जानकर उसकी आराधना करो!

आत्मलाभ का अवसर

अरे जीव! परमात्मा तेरे अंतर में सदा निकट विराजमान है-तुझसे किंचित् भी दूर नहीं... वह तू ही है-ऐसा संत अनुग्रहपूर्वक कहते हैं।

अहा, जिसने ऐसा शुद्ध परमात्मतत्त्व अपने अंतर में देख लिया है-जान लिया है-अनुभव कर लिया है, वह धर्मात्मा धन्य है... मुनि भी उसकी प्रशंसा करते हैं।

अहा, संतों ने ऐसा शुद्ध चैतन्यतत्त्व जोरशोर से सुनाया है, समस्त निजवैभव से तुझे शुद्धात्मा दिखलाया है, तो अब आज से ही ऐसे चैतन्यतत्त्व को अनुभव में लेना... आज से ही अपूर्व प्रारंभ कर देना... आत्मलाभ का यह उत्तम अवसर है।

सम्यग्ज्ञान परम अमृत है

उसकी महिमा, तथा उसकी आराधना का उपदेश

अहो, जगत में जीव को परम सुख का कारण सम्यग्ज्ञान है, सम्यग्ज्ञान समान अन्य कोई सुख का कारण नहीं है; पुण्य या पाप के भाव सुख का कारण नहीं है; अंतर में चैतन्य का ज्ञानपरिणमन ही जीव को सर्वत्र सुख का कारण है। जन्म-जरा-मरण के रोग का निवारण करने के लिये यह सम्यग्ज्ञान परम अमृत है। सम्यग्ज्ञानरूपी अमृत द्वारा जन्म-मरण का नाश करके जीव अमर पद को प्राप्त करता है। इसलिये तुम ऐसे सम्यग्ज्ञान की आराधना करो!

सम्यग्दर्शन सहित जो सम्यग्ज्ञान है, उसके दो भेद हैं—एक परोक्ष और दूसरा प्रत्यक्ष।

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान, यह दोनों इंद्रियों तथा मन द्वारा उत्पन्न होते हैं, इसलिये परोक्ष हैं।

अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान, यह दोनों एकदेश प्रत्यक्ष हैं, उनके द्वारा जीव मर्यादित द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को, इन्द्रिय-मन के अवलंबन बिना प्रत्यक्ष-स्पष्ट जानता है।

केवलज्ञान सम्पूर्ण प्रत्यक्ष है; केवली भगवंत समस्त द्रव्य के अनंत गुणों को तथा अनंत पर्यायों को एक साथ प्रत्यक्ष जानते हैं। जानने में उन्हें कोई द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की मर्यादा नहीं है। अहो, यह केवलज्ञान की अद्भुत अचिंत्य महिमा है; उसे जानने पर भी जीव को ज्ञानस्वभावी प्रतीति सहित, अतीन्द्रिय सुख के वेदनयुक्त सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है। प्रवचनसार में आचार्यदेव ने उसकी महान महिमा का वर्णन किया है। अरे, केवलज्ञान की महिमा की तो क्या बात! चौथे गुणस्थान का जो सम्यग्ज्ञान मति-श्रुतरूप है, उसकी भी अपूर्व महिमा है; वह परम आनंदमय अमृत है, वह मोक्ष को साधनेवाला है।

सम्यग्दृष्टि जीव को सम्यग्दर्शन के साथ वर्तते हुए सम्यग्ज्ञान की यह बात है। पर को

जाननेवाले मति-श्रुतज्ञान में इंद्रिय-मन का अवलंबन है, परंतु वह मति-श्रुताान जब आत्म-सन्मुख होकर निर्विकल्प स्वसंवेदन करता है, तब उसमें मन या इंद्रियों का अवलंबन नहीं रहता, उतने अंश में स्वसंवेदन में वह भी प्रत्यक्ष है। तत्त्वार्थसूत्र आदि में जहाँ मति-श्रुतज्ञान को सामान्यरूप से परोक्ष कहा है, वहाँ इतना विशेष समझना कि—निर्विकल्प अनुभवदशा में तो वे ज्ञान स्वसंवेदनप्रत्यक्ष हैं, अतीन्द्रिय हैं, मन-इंद्रिय के अवलंबन रहित हैं। ऐसा अतीन्द्रिय आत्मज्ञान गृहस्थ को भी होता है; परंतु ज्ञान में स्वोन्मुख होकर निर्विकल्प-स्वसंवेदन का काल क्वचित ही होता है, इसलिये उस बात को मुख्य न करके सामान्य वर्णन में मति-श्रुतज्ञान को परोक्ष कहा गया है।

ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय के भेद के विकल्प रहित होकर जब आत्मा स्वयं अपने स्वरूप का ही अनुभव करता है—जानता है, तब उसे प्रत्यक्ष अतीन्द्रियज्ञान है। सम्यग्दर्शन होते समय ज्ञान में ऐसा अतीन्द्रियपना हुआ, तब वह सम्यक् हुआ। वह ज्ञान अतीन्द्रिय आनंद के वेदन सहित है। इसके अतिरिक्त काल में मति-श्रुतज्ञान परोक्ष हैं। जिसमें इन्द्रियों का निमित्त हो, उस ज्ञान से तो इंद्रियों के विषयभूतरूपी पदार्थ ही ज्ञात होते हैं परंतु कहीं अरूपी आत्मा उनसे ज्ञात नहीं होता। भगवान चैतन्यसूर्य स्वयं अपने को प्रकाशित करे, उसमें जड़-इंद्रियों का निमित्त कैसा? अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप आत्मवस्तु है, वह प्रत्यक्ष ज्ञाता है; वह स्वयं इंद्रियज्ञान द्वारा नहीं जानता, तथा इंद्रियज्ञान द्वारा वह जानने में आये वैसा नहीं है; मन के अवलंबन से भी वह ज्ञान हो, ऐसा नहीं है। मन के अवलंबन से तो स्थूल परवस्तु परोक्ष ज्ञात होती है।

आँख द्वारा शरीरादि का रूप दिखायी देता है; परंतु आँख द्वारा कहीं आत्मा दिखायी नहीं देता। ज्ञान रागादि से पृथक् होकर, अंतर्मुख होकर जब स्वयं अपने को पकड़ता है, तब शांति का वेदन होता है; उस अतीन्द्रिय शांति के वेदनकाल में सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को चौथे गुणस्थान में भी ज्ञान अतीन्द्रिय है, इसलिये प्रत्यक्ष है। स्वोन्मुख हुआ ज्ञान अकेला आत्म-सापेक्ष होने से प्रत्यक्ष है, उसमें अन्य किसी का अवलंबन नहीं है।—ऐसे अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा ही मोक्षमार्ग प्रारंभ होता है।

प्रश्नः—आप कहते हैं कि आत्मा को देखो। अब आँख से तो आत्मा दिखायी नहीं देता, और आँखें बंद करने से अंदर अंधेरा ही अंधेरा दिखाई देता है; तो आत्मा को देखें कैसे?

उत्तर:—भाई, इंद्रियज्ञान द्वारा आत्मा दिखाई नहीं देता, वह अतीन्द्रियज्ञान द्वारा ही दिखायी देता है। आँखें बंद की, तब भी 'यह अंधेरा है और अंधेरा है, वह मैं नहीं हूँ'—ऐसा जाना किसने? आत्मा ने या किसी और ने? अंधकार को जाननेवाला स्वयं कहीं अंधा नहीं है, वह तो जागृत चैतन्यसत्ता है और वही आत्मा है। प्रथम तो चैतन्यवस्तु कैसी है, उसे लक्षगत करना चाहिये; पश्चात् उसका अत्यंत रस और अत्यंत महिमा आने पर, परिणाम उसमें एकाग्र होकर, अनुभव में उसका साक्षात्कार होता है। 'यह अंधेरा है'—इसप्रकार अंधेरे को देखा किसने? अंधेरा स्वयं अपने को नहीं देखता, परंतु चैतनयसत्ता देखती है कि वह अंधेरा है और मैं उसे जाननेवाली हूँ। अंधेरे को जाननेवाला 'मैं अंधेरा हूँ' ऐसा नहीं जानता, परंतु 'यह अंधेरा है'—ऐसा जानता है, अर्थात् अंधेरे को जाननेवाला अंधेरे से पृथक् है। बस! यह ज्ञाता तत्त्व ही आत्मा है और अंतर्मुख मति-श्रुतज्ञान द्वारा ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्मा को जाना जा सकता है। बाकी आँख आदि से आत्मा को नहीं जाना जा सकता। भाई, जिस चैतन्यसत्ता में यह सब ज्ञात होता है, वह तू ही है; उसे अंतर्विचार में ले! अनादिकाल से स्वयं अपनी चैतन्यसत्ता का विचार नहीं किया। जाननेवाला स्वयं 'मैं ज्ञाता हूँ'—ऐसे अपने अस्तित्व को ही न माने, यह आश्चर्य है।

हे जीव! ज्ञान, वह तेरा स्व है; अंधकार, पर है। अंधकार और प्रकाश यह दोनों पर्यायें पुद्गल की हैं, उन्हें जाननेवाला अरूपी ज्ञान आत्मा का है। ऐसे आत्मा का निर्णय करने के लिये अंतर में उद्यम करना चाहिये। बाह्य में पाँच-पच्चीस हजार रुपये कमाने के लिये कितनी लगन से मेहनत करता है? घरबार छोड़कर, खाने-पीने की असुविधा सहन करके भी परदेश जाता है और दिन-रात परिश्रम करता है। तो यह सादि-अनंत काल तक महान सुख देनेवाली अपनी अद्भुत ज्ञानलक्ष्मी कैसी है! उसे प्राप्त करने के लिये, उसका अनुभव करने के लिये, अंतर में कितनी लगन से उद्यम करना चाहिये? भाई, तेरी सच्ची लक्ष्मी तो यह सम्यग्ज्ञान है कि जो परम सुख देनेवाला है; पैसा आदि तो जड़ रजकण है, वह कोई तेरी लक्ष्मी नहीं है और उसमें से तुझे कभी सुख प्राप्त होनेवाला नहीं है।

ज्ञान का स्वभाव प्रत्यक्ष अर्थात् मात्र जानने का है; जानने में पर का अवलंबन ले, ऐसा उसका स्वभाव नहीं है। आँख से दिखायी दे, वह प्रत्यक्ष-यह व्याख्या सच्ची नहीं है। आँख के बिना मात्र आत्मा से जो सीधा ज्ञान हो, वह प्रत्यक्ष है और आँख आदि पर की अपेक्षा सहित जो

ज्ञान हो, वह परोक्ष है। प्रत्यक्ष ज्ञान में पर का अवलंबन नहीं होता। अरे, जानने का स्वभाव अपना, उसमें परावलंबन की पराधीनता कैसी ? परावलंबी-परोक्ष ज्ञान द्वारा आत्मा ज्ञात नहीं होता। इंद्रियातीत एवं राग से पार ऐसे स्वाधीन अतीन्द्रियज्ञान द्वारा आत्मा ज्ञात होता है। स्वाधीन कहो, अतीन्द्रिय कहो या प्रत्यक्ष कहो, यह ज्ञान स्पष्ट है, उसका आरंभ चतुर्थ गुणस्थान से हो जाता है; चतुर्थ गुणस्थान में स्वानुभूति में सम्यक् मति-श्रुतज्ञान प्रत्यक्ष होते हैं, उनमें इंद्रिय या मन निमित्त नहीं है। ऐसा स्वानुभव प्रत्यक्ष अतीन्द्रियज्ञान आठ वर्ष की बालिका को भी होता है। उस सम्यग्दृष्टि बालिका को ध्यानकाल में अंतर में राग तथा इंद्रियों की अपेक्षा बिना अपने ज्ञान-आनंदमय आत्मा का वेदन होता है; उस काल के सम्यग्ज्ञान को अध्यात्मशैली में प्रत्यक्ष कहा जाता है। वह ध्यान में हो, तब स्वानुभव में स्वयं अपने आत्मा को तन्मय होकर जानता है, तब बाह्य में अन्य सबका लक्ष्य छूट जाता है; इसप्रकार ज्ञान स्वयं अपने में एकाग्र होकर अतीन्द्रियरूप से आत्मा का अनुभव करता है, तब आत्मा में अतीन्द्रिय आनंदरस की धारा उल्लसित होती है। सिंहादि पशुओं में भी जो जीव सम्यग्दृष्टि हो, उस जीव को ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान प्रगट हुआ होता है। तीर्थंकर परमात्मा के समवसरण में सिंह, बाघ, हाथी, हिरन, खरगोश, सर्प आदि पशु भी आते हैं, और उनमें से अनेकों जीव ऐसा आत्मस्वरूप जानकर प्रत्यक्ष अतीन्द्रियज्ञान द्वारा उसका अनुभव करते हैं। महावीर भगवान के आत्मा ने सिंह पर्याय में ऐसा अनुभव किया था, और पार्श्वनाथ भगवान के आत्मा को हाथी की पर्याय में ऐसा अनुभव हुआ था। उन सिंह और हाथी को भी ऐसा प्रत्यक्ष अतीन्द्रियज्ञान था। वर्तमान में भी इस मध्यलोक में असंख्य पशु ऐसे आत्मज्ञान सहित वर्तते हैं।

अहा, सम्यग्ज्ञान की शक्ति तो देखो! भाई, ऐसा ज्ञानस्वरूप आत्मा तू स्वयं है। यह शरीर या राग तू नहीं है; अंतर में आनंदमय ज्ञानस्वरूप जो आत्मा है, वह तू है। ऐसे आत्मा का ज्ञान करने का यह अवसर है। लंका के महाराजा रावण का मुख्य हाथी त्रिलोकमंडन, जिसे रामचंद्रजी अपने साथ अयोध्या लाये थे, उस हाथी को भी ऐसा आत्मज्ञान हुआ था, तथा पूर्वभव का जातिस्मरण ज्ञान भी हुआ था।—आखिर वह भी तो आत्मा था! उसमें भी ज्ञानशक्ति भरी थी; उसे स्वसंवेदन द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव में लेकर उसने सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रगट किया।

यह सम्यग्ज्ञान का प्रकरण चलता है। सम्यक् मति-श्रुतज्ञान स्वसंवेदनकाल में प्रत्यक्ष

हैं और शेष काल में परोक्ष हैं। अवधि और मन:पर्ययज्ञान एकदेश प्रत्यक्ष हैं, वे इंद्रियों और मन के निमित्त बिना, अमुक मर्यादित क्षेत्र में स्थित अमुक ही पदार्थों को, उनके अमुक ही काल को तथा अमुक भावों को ही जानते हैं अर्थात् अधूरे हैं; वे जितना जानते हैं, उतना तो प्रत्यक्ष जानते हैं, परंतु अधूरा जानते हैं। इसलिये उन्हें देशप्रत्यक्ष कहा जाता है। श्रुतज्ञान में तो सर्व पदार्थों को परोक्ष जानने की शक्ति है—ऐसा कहा है। श्रुतज्ञान में बड़ी शक्ति है और केवलज्ञान तो अद्भुत अचिंत्य महिमावान संपूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञान है। सम्यक् मति-श्रुतज्ञान सब सम्यग्दृष्टि साधक जीवों को होता है; अवधिज्ञान किन्हीं-किन्हीं जीवों को होता है। देश अवधिज्ञान चारों गतियों में होता है। नरक में और देवगति में तो सर्व सम्यग्दृष्टियों को होता है, और तिर्यंच तथा मनुष्य में किन्हीं-किन्हीं जीवों को होता है। विशेष अवधिज्ञान (परमावधि और सर्वावधि) तो किन्हीं विशेष मुनिवरों को ही होता है; कुअवधिज्ञान विभंगज्ञान तो देव, नारकी में सर्व जीवों को होता है; अनेक तिर्यंचों तथा मनुष्यों को भी विभंगज्ञान होता है और उसके द्वारा अनेक द्वीप-समुद्रादि को जान सकते हैं; परंतु मोक्षमार्ग में उसका कोई मूल्य नहीं है; वह कोई वीतराग-विज्ञान नहीं है, वह तो अज्ञान है। साधारण बैल आदि अज्ञानी प्राणी भी ज्ञान के किंचित् विकास द्वारा सामनेवाले के मन की बात जान लेते हैं, तब अज्ञानियों को आश्चर्य पैदा होता है, परंतु अतीन्द्रिय केवलज्ञान के अद्भुत अचिंत्य सामर्थ्य की उन्हें खबर नहीं है; अरे! सम्यग्दृष्टि के स्वसंवेदन में अतीन्द्रिय मति-श्रुतज्ञान की अपार शक्ति है, उसकी उन्हें खबर नहीं है। ज्ञान तो किसे कहा जाता है?—कि जो राग से पार होकर आनंदरस में निमग्न हुआ है—ऐसा ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है, वही वीतरागविज्ञान है और वह मोक्ष का कारण है। मन:पर्ययज्ञान भी किन्हीं विशिष्ट ऋद्धिधारी मुनियों को ही होता है, और उसमें भी विपुलमति मन:पर्ययज्ञान तो चरमशरीरी मुनिवरों को ही होता है। केवलज्ञानरूप महा प्रत्यक्षज्ञान अरिहंत और सिद्ध भगवंतों को होता है।—इसप्रकार पाँच प्रकार का सम्यग्ज्ञान जानकर उसकी आराधना करो।

केवलज्ञान प्रगट करके जो परमात्मा हुए वे, अनादि से तो बहिरात्मा थे; उन्होंने प्रथम तो सम्यग्दर्शन किया; उसके साथ मति-श्रुतरूप सम्यग्ज्ञान हुआ; इसलिये बहिरात्मपना छोड़कर वे अंतरात्मा हुए। पश्चात् शुद्धोपयोग द्वारा स्वरूप में लीन होकर चारित्ररूप मुनिदशा की साधना की। उनमें किन्हीं को अवधि-मन:पर्ययज्ञान प्रगट होते हैं और किन्हीं को नहीं

प्रगट होते;—उसके साथ मोक्षमार्ग का संबंध नहीं है। पश्चात् शुद्धोपयोग द्वारा स्वरूप में पूर्ण लीन होने पर वीतरागता और केवलज्ञान हुआ अर्थात् वे अरिहंत परमात्मा हुए। वे परमात्मा दिव्यशक्तिवान केवलज्ञान द्वारा तीनकाल-तीनलोक को एकसाथ प्रत्यक्ष जानते हैं। 'णमो अरिहंताणं' कहते हुए ऐसे केवलज्ञान की प्रतीति साथ आना चाहिये, तभी अरिहंतदेव को सच्चा नमस्कार होता है। पंच परमेष्ठी में अरिहंत और सिद्धभगवान केवलज्ञानी हैं। सीमंधर भगवान आदि लाखों अरिहंत भगवंत वर्तमान में भी मनुष्यलोक में विचर रहे हैं; ऐसे केवलज्ञान की प्रतीति आत्मा के ज्ञानस्वभाव की प्रतीति पूर्वक होती है। ऐसा केवलज्ञान कैसे होता है ?—तो कहते हैं कि—सर्वज्ञस्वभावी आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक उसका अनुभव करते-करते केवलज्ञान होता है, अन्य किसी उपाय से केवलज्ञान नहीं होता। पहले सम्यग्ज्ञान भी शुभराग से नहीं होता परंतु रागरहित आत्मा के अनुभव से ही होता है; और पश्चात् केवलज्ञान भी रागरहित आत्मा के अनुभव में एकाग्रतारूप शुद्धोपयोग द्वारा ही होता है—ऐसा जाने, तभी केवलज्ञान को जाना कहा जाता है। राग द्वारा ज्ञान होना माने, उसने केवलज्ञान को या एक भी ज्ञान को नहीं जाना है; उसने तो ज्ञान और राग की मिलावट करके केवलज्ञान को भी रागयुक्त माना है; क्योंकि राग को कारण माना तो उसका कार्य भी रागयुक्त ही होता है। परंतु ज्ञान और राग की अत्यंत भिन्नता जानकर ज्ञानस्वभाव का अनुभव करना, वही केवलज्ञान का कारण है—ऐसा धर्मी जीव जानते हैं और वे ज्ञान के साथ राग की जरा भी मिलावट नहीं करते; वे तो वीतरागविज्ञान द्वारा केवलज्ञान और मोक्षसुख को साधते हैं।

चैतन्य की अगाध शक्तिवाला तथा सर्वथा रागरहित ऐसा केवलज्ञान है, उस केवलज्ञान का स्वीकार राग द्वारा नहीं हो सकता परंतु ज्ञानस्वभाव की सन्मुखता से ही होता है। ज्ञानस्वभाव के सन्मुख होने पर राग से पृथक् हुआ, इसलिये अपने में भेदज्ञान होकर सम्यग्ज्ञान हुआ; वहाँ सर्वज्ञ की भी सच्ची पहिचान हुई। उस ज्ञान के साथ रागरहित वीतरागी सुख भी साथ ही है। सम्यक् मति-श्रुतज्ञान, वे राग से भिन्न केवलज्ञान की जाति के हैं, वे केवलज्ञान के साथ केलि करनेवाले हैं।

— इसप्रकार सम्यग्ज्ञान का स्वरूप जानकर उसका सेवन करो; क्योंकि जगत में सम्यग्ज्ञान के अतिरिक्त अन्य कोई जीव को सुख का कारण नहीं है; सम्यग्ज्ञान ही जन्म-मरण के दुःखों को मिटानेवाला तथा मोक्षसुख देनेवाला परम अमृत है।●●●

सुख

ज्ञानचेतना द्वारा ही सुख का अनुभव होता है।
ज्ञानचेतना स्वयं सुखरस से भरपूर है।

देवलोक के देवों की अपेक्षा असंख्यातगुना दुर्लभ ऐसा यह मनुष्यभव पाकर, विषय-कषायरूप अशुभ में भव को गँवाये या कुदेव-कुगुरु के सेवन में जीवन खोये, उसकी तो क्या बात? परंतु सच्चे वीतरागी देव-गुरु को ही माने, अन्य को न माने, विषय-कषाय के पापभाव छोड़कर शील-व्रत के शुभभाव में मग्न रहे और उसमें संतोष माने कि अब इससे मोक्ष हो जायेगा; परंतु व्रतादि के शुभराग से पार ज्ञानचेतना का अनुभव न करे तो वह जीव भी रंचमात्र सुख को प्राप्त नहीं करता। वह स्वर्ग में जाता है, परंतु उससे क्या? सुख तो रागरहित चैतन्यपरिणति में है, कहीं स्वर्ग के वैभव में सुख नहीं है। ज्ञानचेतना द्वारा ही सुख का अनुभव होता है, ज्ञानचेतना स्वयं सुखरस से परिपूर्ण है।

यह किसकी बात है?—तेरी अपनी। भाई! तू स्वयं ज्ञानचेतनारूप है... अपनी ज्ञानचेतना को भूलकर अनंत बार तू शुभभाव कर चुका है। शुभ के साथ अज्ञान है, इसलिये राग में सर्वस्व मानकर रागरहित पूर्ण ज्ञानस्वभाव का तू अनादर कर रहा है। सम्यग्ज्ञान के बिना राग में सुख कहाँ से होगा? शुभराग में ऐसी शक्ति नहीं कि अज्ञानरूपी अंधकार और दुःख को दूर करे। ज्ञानवस्तु राग से भिन्न है; उस ज्ञानचेतना के प्रकाश द्वारा ही अज्ञान-अंधकार दूर होता है और सुख प्रगट होता है। निजानंदी ज्ञानस्वरूप आत्मा की ओर उन्मुख होकर सम्यग्ज्ञान-चेतना प्रगट किये बिना सुख का अंश भी प्रगट नहीं होता।

अतीन्द्रिय आनंद का पिंड आत्मा स्वयं है; राग में कहीं सुख नहीं है। राग में से या बाह्य से सुख लेना चाहे, वह तो सुख की सत्ता आत्मा है, उसका अस्वीकार करता है। अरे, जहाँ सुख है-जो स्वयं सुख है, उसका स्वीकार किये बिना सुख कहाँ से होगा?

प्रश्न—शुभराग में सुख भले न हो, परंतु दुख तो नहीं है?

उत्तर—अरे भाई! उसमें आकुलतारूप दुःख ही है; जड़ में सुख-दुःख की कोई वृत्ति

नहीं है, चैतन्यतत्त्व अपने ज्ञानभाव द्वारा सुख का वेदन करता है, और अज्ञानभाव से दुःख का वेदन करता है। भेदज्ञान, वह सिद्धपद का कारण है और भेदज्ञान का अभाव अर्थात् अज्ञान, वह संसार-दुःख का कारण है। जहाँ चैतन्य के ज्ञान की शांति का वेदन नहीं है, वहाँ कषाय है। भले अशुभ हो या शुभ हो-परंतु जो कषाय है, वह तो दुःख ही है। शुभकषाय को कहीं शांति तो नहीं कहा जा सकता। आत्मज्ञान के द्वारा क्षणमात्र में करोड़ों भव के कर्म छूट जाते हैं, और सम्यग्ज्ञान के बिना करोड़ों वर्ष के तप द्वारा भी सुख का एक बिन्दु भी प्राप्त नहीं होता। देखो तो सही, ज्ञान की अपार महिमा! अज्ञानी जीव को ज्ञान की खबर नहीं है, उसे तो राग ही दृष्टिगोचर होता है, परंतु राग से पार चैतन्य की गहराई में भरा हुआ ज्ञान उसे दिखाई नहीं देता। इसलिये कहते हैं कि हे भाई! मोक्ष का कारण तो सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान सहित चारित्र है। सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान के बिना आचरण मिथ्या है, उसमें रंचमात्र भी सुख नहीं है। इसप्रकार सम्यग्ज्ञान की महिमा जानकर, उसे परम अमृत के समान जानकर उसका सेवन करो।

यह रत्नचिन्तामणि समान मनुष्य पर्याय-प्राप्त करके तथा जिनवाणी का श्रवण करके हे जीवो, तुम दुर्लभ ऐसे सम्यग्ज्ञान का अभ्यास करो और आत्मा को पहिचानो—ऐसा सर्व संतों का उपदेश है।

स्व-विषय में सुख ✿ पर-विषय में दुःख

जीव को समस्त पदार्थों को जानने की इच्छा है, परंतु इन्द्रियातीत ज्ञान अपने-अपने अल्प विषयों का ही ग्रहण कर सकता है, और बाह्य विषयों के वेग से वह आकुल-व्याकुल दुःखी रहता है। यदि इंद्रियों से भिन्नता जानकर ज्ञान को अंतर्मुख करके स्व-विषय को ग्रहण करे, तो आनंद का अनुभव हो और बाह्य विषयों के ग्रहण की आकुलता मिट जाये।

जैनशासन का महासिद्धांत

[श्री समयसार गाथा 308 से 311 के प्रवचनों से]

'दवियं जं उप्पज्जइ गुणेहिं तं तेहिं जाणसु अणण्णं'

'जो द्रव्य उपजे जिन गुणों से उनसे जान अनन्य वह'

पर्याय का द्रव्य के साथ अनन्यपना है—

उसके निर्णय में स्वसन्मुख होकर बंध का अकर्तापना होता है और मोक्ष की ओर परिणति का अपूर्व क्रमप्रवाह प्रारंभ होता है।

देखो, प्रत्येक वस्तु की पर्याय को अपने-अपने द्रव्य के साथ अनन्यपना है, उसमें तो महासिद्धांत है। जीव की जो-जो पर्यायें हैं, उन्हें अपने द्रव्य के साथ अनन्यपना है, इसलिये अपनी प्रत्येक पर्याय में अपने द्रव्य को अनन्यरूप से देख, पर्याय में अनन्य ऐसे द्रव्य को देख!

अब, जहाँ द्रव्य के साथ पर्याय अनन्य हुई, वहाँ उस पर्याय में राग का कर्तृत्व नहीं रहा, क्योंकि द्रव्यस्वभाव में तो राग नहीं है। द्रव्य-सन्मुख होने से पर्याय शुद्ध होकर परिणमित हुई। द्रव्यस्वभाव में अनन्य हुई वह पर्याय अब राग में क्यों तन्मय होगी? द्रव्यस्वभाव की ओर झुके हुए ज्ञानस्वभाव को राग से तो अन्यपना हो गया। अहो, द्रव्य-पर्याय के अनन्यपने के सिद्धांत में तो राग से भिन्नपना हो जाता है, इसलिये राग का अकर्तापना हो जाता है। ऐसा वीतरागी तात्पर्य समझे अर्थात् ऐसे भावरूप स्वयं परिणमित हो, तभी शास्त्र का रहस्य समझा जा सकता है। मेरी पर्याय का अनन्यपना अपने ज्ञानस्वभावी द्रव्य के साथ है, अन्य किसी के साथ नहीं—ऐसा निर्णय करने पर तो परिणमन का सारा प्रवाह ही स्वोन्मुख हो गया, मोक्ष के ओर की पर्याय का अपूर्व प्रवाह प्रारंभ हुआ। ऐसे जीव को ही 'द्रव्य की क्रमबद्धपर्याय' का सच्चा रहस्य समझ में आता है।

यहाँ आचार्यदेव आगम से, युक्ति से, न्याय से तथा दृष्टांत से कर्ता-कर्म की पर से निरपेक्षता बतलाकर, आत्मा को पक्का अकर्तृत्व सिद्ध करते हैं। ऐसा अकर्तापना समझकर अपने चैतन्यभाव में ही तन्मय परिणमित होता हुआ जीव कर्म का अकर्ता होकर मोक्ष को साधता है।

प्रथम तो इस जगत में जो कोई जीव या अजीव पदार्थ हैं, वे सब अपनी-अपनी पर्याय में तादात्म्यरूप से वर्तते हैं। जीव क्रमनियत ऐसे अपने जीवपरिणाम में तन्मयरूप से वर्तता है, वह अजीव से भिन्न है; और अजीव भी अपने अजीवपरिणाम में तन्मयरूप से वर्तता है, वह जीव से भिन्न है।—ऐसी दोनों की भिन्नता है। इसप्रकार अपने-अपने परिणाम में ही तन्मय वर्तते हुए द्रव्यों को अन्य द्रव्य के साथ कर्ता-कर्मपना नहीं है।

जीव अपनी क्रमनियत जीवपर्यायोंरूप से उत्पन्न होता हुआ उनका कर्ता है, परंतु वह अजीव की पर्यायों का कर्ता नहीं है, अजीव की पर्यायरूप से वह उत्पन्न नहीं होता, तथापि अजीव का कर्तृत्व मानता है, वह अज्ञान है और अज्ञान से ही जीव को संसार है।

अपने परिणाम में मैं, और पर के परिणाम में पर, ऐसी भिन्नता न जानकर, जो अज्ञानी ऐसा मानता है कि मेरे परिणाम को दूसरा करता है या दूसरे के परिणाम को मैं करता हूँ, वह जीव अपने ज्ञानस्वभाव को भूलकर, पर के आश्रित (कर्म के आश्रित) अज्ञानरूप से उत्पन्न होता हुआ कर्मों से बँधता है, और संसार में भटकता है।

भाई, तेरी पर्याय के आश्रय से तेरा द्रव्य है और तेरे द्रव्य के आश्रय से तेरी पर्याय है;—इसप्रकार कर्ता-कर्म का (द्रव्य-पर्याय का) अपने में ही अनन्यपना है, अन्य किसी के साथ उसे संबंध नहीं है, अन्य किसी की उसे अपेक्षा नहीं है।

तेरा द्रव्य दूसरे की पर्याय में नहीं वर्तता कि तू उसे करे; और तेरी पर्याय में दूसरा द्रव्य नहीं वर्तता कि वह तेरी पर्याय को करे। तेरा कर्ता तू और पर का कर्ता पर।—उसमें किसी को दूसरे का आश्रय नहीं है।

रे! कर्म-आश्रित होय कर्ता, कर्म भी करतार के।
आश्रित हुए उपजे नियम से, अन्य नहिं सिद्धी दिखे॥

कर्ता और उसका कर्म दोनों अनन्य ही होते हैं, इसके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार

उसकी सिद्धि नहीं हो सकती अर्थात् भिन्न पदार्थों के बीच किसी प्रकार कर्ता-कर्मपना सिद्ध नहीं हो सकता। अरे, ऐसा पर से निरपेक्षपना समझे तो स्वसन्मुख होकर ज्ञानभाव में ही तन्मयरूप से परिणमित हो। उस ज्ञान में रागादि का या कर्म का कर्तापना नहीं है; वह तो अपने ज्ञानमयभाव में ही क्रमबद्ध परिणमता हुआ मोक्ष की ओर ही चला जाता है। ज्ञान में राग का कर्तृत्व कैसा ? और ज्ञान को कर्म का बंधन कैसा ? ऐसे ज्ञानरूप से परिणमित आत्मा कर्म का अकर्ता ही है। वह तो ज्ञानस्वभाव की स्वीकृति द्वारा आनंद करता-करता, अनंत गुण के निर्मल क्रम में परिणमित हो रहा है।—उस परिणमन में राग के कर्तृत्व का समावेश नहीं होता, वह परिणाम राग में तन्मय नहीं होता; इसलिये कर्म का निमित्तकर्तापना भी उसे नहीं है।

भाई, तेरी सत्ता तेरे परिणाम में होती है, दूसरे के परिणाम में तेरी सत्ता नहीं होती। दो द्रव्यों की सत्ता अत्यंत भिन्न है, वे एक-दूसरे की पर्याय में नहीं जाते, अर्थात् एक-दूसरे की पर्याय को नहीं करते। यदि एक-दूसरे की पर्याय को करें तो दोनों द्रव्य एक हो जायें, जीव और अजीव दोनों एक हो जायें, इसलिये किसी की भिन्न सत्ता न रहे; 'सत्ता का नाश' हो जाये अर्थात् सत्यानाश हो जाये !

अपनी सत्ता भिन्न न जानकर; जो अज्ञानी पर के साथ कर्ता-कर्मपना मानेगा, वह अपने अज्ञानरूप से उत्पन्न होता हुआ, कर्मबंध में निमित्तकर्ता होकर संसार में परिभ्रमण करेगा। कर्म में आत्मा निमित्त और आत्मा में कर्म निमित्त—ऐसा अज्ञानी को है। ज्ञानी तो ज्ञानभाव में तन्मयरूप से-ज्ञानरूप से-ही परिणमित होता है, वह ज्ञानभाव कर्म में निमित्त नहीं है और कर्म उस ज्ञानभाव में निमित्त नहीं है। इसप्रकार ज्ञानभावरूप ज्ञानी को पर का अकर्तापना ही है और अपने अनंतगुणों की निर्मल पर्याय में तन्मयरूप से उत्पन्न होता हुआ वह उसका कर्ता है।

अहो, इस कर्ता-कर्म के सिद्धांत पर संपूर्ण मोक्षमार्ग है। कर्ता-कर्म का ऐसा स्वाधीनपना निश्चित किये बिना कभी मोक्षमार्ग नहीं होता; क्योंकि जहाँ तक पर के साथ कर्ता-कर्मपना माने, तब तक पराश्रयबुद्धि मिट ही नहीं सकती और पराश्रय से कभी मोक्षमार्ग हो नहीं सकता। पर से अत्यंत भिन्नता का निर्णय करके, अपने ज्ञानस्वभाव में स्वाश्रय से परिणमित होने पर मोक्षमार्ग प्रगट होता है।

आत्मा ज्ञानस्वरूप है; ज्ञान का क्रमबद्ध उत्पाद ज्ञानरूप है। ज्ञान के क्रम में बीच में राग

या जड़ नहीं आता। इसप्रकार अपनी ज्ञानपर्याय में मैं ही उपजता हूँ—अन्य कोई नहीं—ऐसा निर्णय करनेवाला अपने स्वभावरूप से ही उत्पन्न होता हुआ रागादि परभावों को नहीं करता। इसप्रकार स्वभाव से निर्मल परिणाम में उपजता हुआ आत्मा रागादि का तथा कर्मों का अकर्ता ही है।—वह ज्ञाताद्रव्यभावरूप रहा, वही धर्म है, वही मोक्षमार्ग है, वही धर्मी का कार्य है।

भाई, तू तो ज्ञान है; ज्ञान तो पुष्प समान हल्का-शांत है, उसमें राग तो भाररूप है; वह ज्ञान का स्वरूप नहीं किंतु बोझ है, ज्ञान उसे उत्पन्न नहीं करता। ज्ञान उसे जाने भले ही, परंतु स्वयं उसरूप होकर उत्पन्न नहीं होता, स्वयं तो ज्ञानरूप रहकर ही उत्पन्न होता है। ज्ञान के साथ श्रद्धा-आनंदादि अनंत गुण भी अपनी-अपनी पर्यायरूप से उत्पन्न होते हैं।—इसप्रकार धर्मी को अनंत गुणों का निर्मल कार्य प्रतिक्षण अपनी पर्याय में हो रहा है। वह निर्मल परिणमन रागादि से भिन्न है, इसलिये धर्मी उन रागादि के अकर्ता हैं।

हे जीव! अपने आत्मा को तू ज्ञानरूप से उत्पन्न होता देखा। ज्ञान से भिन्न अन्य समस्त परिणामों में से तादात्मयपने की बुद्धि निकाल दे। परिणामी वस्तु को अपने परिणाम के साथ ही एकता है, अन्य किसी के साथ एकता नहीं है परंतु भिन्नता ही है। इसप्रकार जीव और अजीव की बिल्कुल भिन्नता है, एकता नहीं है—इसलिये उनमें परस्पर कर्ता-कर्मपना भी नहीं है। ऐसी भिन्नता को जाने बिना राग का या कर्म का कर्तृत्व कभी छूट नहीं सकता है और धर्म हो नहीं सकता। और जहाँ भिन्नता को जाने, वहाँ ज्ञान में रागादि का कर्तृत्व नहीं रहता।

— इस जगत में जीव-अजीव की तथा उनके कार्यों की भिन्नता देखी जाती है।

— एक द्रव्य उपजता हुआ अन्य द्रव्य की पर्याय में तन्मय होकर उसे करता हो—ऐसा तो कहीं देखने में नहीं आता।

जीव उत्पन्न होकर अजीव की किसी पर्याय को करता हो, धन की, शरीर की, या खान-पान, शब्द, अक्षर आदि किसी भी पर्याय को जीव करता हो—ऐसा तो जगत में कहीं दिखायी नहीं देता; अज्ञानी जीव अज्ञान के कारण व्यर्थ ही अपने में अजीव का अकर्तृत्व मानता है। जीव और अजीव—दोनों की अपनी-अपनी पर्याय में ही बिल्कुल भिन्न उत्पत्ति होती सदाकाल देखने में आती है; ऐसा स्पष्ट भिन्न वस्तुस्वरूप प्रगट दिखायी देने पर भी अज्ञानी उसे नहीं देखता, इसलिये मिथ्याभाव से पर के साथ कर्ता-कर्मपना मानकर वह संसार में भटकता है।

पुद्गल की शब्दपर्याय के कारण जीव की ज्ञानपर्याय उत्पन्न होती हो—ऐसा हमें तो दिखायी नहीं देता। अपनी ज्ञानपर्यायरूप से तो जीवद्रव्य स्वयं ही उत्पन्न होता दिखायी देता है, और शब्दपर्यायरूप से पुद्गलद्रव्य उत्पन्न होता दिखायी देता है। ऐसा वस्तुस्वरूप प्रगट होने पर भी, यदि तू ऐसा मानता हो कि शब्द के कारण ज्ञान हुआ-तो हे भाई! तुझे वस्तुस्वरूप देखना नहीं आता। यहाँ आचार्यदेव सर्वज्ञ भगवान का देखा हुआ वस्तुस्वरूप प्रगट करते हैं।

कार्य हो, वह अपने कर्ता के साथ (अर्थात् स्वद्रव्य के साथ) तन्मय होता है, अन्य सबसे तो वह पृथक् ही होता है। कर्ता-कर्मपना स्वद्रव्य में एक में ही समाप्त होता है, बाहर नहीं आता। यह नियम जगत में समस्त जीव तथा अजीव पदार्थों में लागू कर लेना।

जीव या अजीव सर्वपदार्थ प्रतिसमय अपनी क्रमनियत अवस्थारूप से स्वयं उत्पन्न होते ही हैं; निमित्त में किन्हीं अनुकूल संयोगों के ढ़ेर हों, वे कहीं इसकी ज्ञानपर्याय को उत्पन्न नहीं करते, या किन्हीं प्रतिकूल संयोगों के समूह हों, वे कहीं इसकी ज्ञानपर्याय की उत्पत्ति को रोक नहीं सकते। भले ही दोनों की पर्यायें एकसाथ हों, तथापि कोई एक-दूसरे के कर्ता नहीं हैं। अहा, यह तो वीतरागविज्ञान है। ऐसे वस्तुस्वरूप को जाननेवाला ज्ञान, राग से भी पृथक् हो जाता है और अंतर में ज्ञानस्वभाव का आश्रय करके अपने ज्ञानमयभाव को ही करता हुआ मोक्षमार्ग प्रगट करता है; वह ज्ञान स्वयं राग का अकर्ता होकर, राग से भिन्न होकर, वीतरागभावरूप परिणमित होता है और मोक्ष को साधता है। अहा, जगत में किसी की अपेक्षा बिना, राग की-विकल्प की भी अपेक्षा बिना, मेरा ज्ञानस्वभावी आत्मा स्वयं शुद्ध ज्ञानानंद परिणामरूप से तन्मय होकर परिणमित होता है।—ऐसी प्रतीति स्वसन्मुखता द्वारा ही हो सकती है। सम्यग्दर्शन के बिना ऐसी अपूर्व प्रतीति नहीं हो सकती।

मोटर में बैठे हुए जीव की गतिपर्याय को कहीं मोटर के पुद्गल नहीं करते, वह जीव स्वयं ही अपनी उस काल की वैसी गतिपर्यायरूप से उत्पन्न होता हुआ स्वयं ही उसका कर्ता होकर उसमें तन्मय और मोटर के पुद्गलों से पृथक् ही वर्तता है;—ऐसी दोनों द्रव्यों की पृथक्ता स्पष्ट दिखायी देती है। तथापि उनमें कर्ता-कर्मपना मानता है, वह अज्ञानी का भ्रम है। उस भ्रम के कारण वह पराश्रय से राग-द्वेष कर-करके दुःखी होता है और संसार में परिभ्रमण करता है। सत्य वस्तुस्वरूप के समझने का फल तो सुख है।

सुख, वह जीव का स्वभाव है; उस सुखपर्यायरूप से जीव स्वयं परिणमित होकर उत्पन्न होता है। सुखपर्याय का उत्पादक जीव है और सुखपर्याय, वह जीव का उत्पाद्य है; पर के साथ उसे उत्पाद्य-उत्पादकपना नहीं है। पैसा, शरीरादि अजीव पदार्थ कहीं जीव की सुखपर्याय के उत्पादक नहीं हैं। सुखस्वभावी जीवद्रव्य स्वयं अपनी सुखपर्याय का उत्पादक है, वह स्वयं उसरूप परिणमित होता है, उस सुखपरिणाम में जीवद्रव्य को तन्मयपना है। ऐसा समझे, वह अपने सुख के लिये कहीं पर का आश्रय न ढूँढे, परंतु अपने स्वद्रव्य के आश्रय से स्वयं ही सुखरूप परिणमित हो।—इसका नाम धर्म है।

क्रमबद्ध उत्पन्न होनेवाली पर्याय को अपने द्रव्य के साथ अनन्यपना (तादात्म्यपना) है और दूसरों से भिन्नपना है,—इसमें तो भेदज्ञान का महा वीतरागी सिद्धांत है।

देखो, आत्मा की पर्याय को आत्मद्रव्य के साथ अनन्यपना है; अब, आत्मद्रव्य तो शुद्ध चैतन्यस्वभावरूप है; उस चैतन्यस्वभाव में तन्मय हुई पर्याय भी चैतन्यभावरूप ही होती है, और उस चैतन्यभाव में रागादि का कर्तृत्व नहीं रहता; इसलिये जिसने द्रव्यस्वभाव में तन्मयपना स्वीकार किया, उसकी पर्यायों का क्रम शुद्ध चैतन्यभावरूप ही होता है और उसको राग का अकर्तृत्व ही होता है। चैतन्यद्रव्य के साथ तन्मय परिणमित हुई पर्याय राग के साथ तन्मय नहीं होती। धर्मी जीव अपने स्वभाव के आश्रय से ऐसी चैतन्यमय क्रमबद्धपर्यायरूप से परिणमित होता हुआ मोक्ष को साधता है।—ऐसा फल जिसके आये, उसी को जीव-अजीव के क्रमबद्धपरिणाम की और सर्वज्ञ की सच्ची श्रद्धा हुई है; अकेले परिणाम की श्रद्धा नहीं है; परिणाम के साथ अभेद वर्तते हुए द्रव्य सहित उसकी पर्याय को जानता है। पर्याय के साथ द्रव्य का अनन्यपना कहकर आचार्यभगवान ने बहुत रहस्य खोला है। अंतर में आत्मा का ज्ञानस्वभाव क्या वस्तु है, वह जमे बिना एक भी बात का सच्चा रहस्य समझ में नहीं आ सकता; और ज्ञानस्वभावोन्मुख होकर जो इस बात का रहस्य समझा, वह तो निहाल हो जाता है! उसके भव का अन्त आ जाता है और मोक्षमार्ग का प्रारंभ हो जाता है।

जो अपने में अजीव का कर्तृत्व माने अथवा राग में तन्मय होकर उसके कर्तारूप से परिणमित हो और कहे कि हमें क्रमबद्धपर्याय की पहिचान है, अथवा हम पर्याय को द्रव्य के साथ अनन्य मानते हैं—तो उसकी बात सच नहीं है। उसने द्रव्यस्वभाव को और पर से भिन्नता

को जाना ही नहीं है। द्रव्यस्वभाव के साथ अनन्यपना मानने से तो पर के साथ कर्ता-कर्म की मिथ्याबुद्धि छूटकर पर्याय अंतर में स्वसन्मुख होकर सम्यक्त्वादि शुद्धभावरूप परिणमित हो जाती है; उसमें किसी अन्य की अपेक्षा नहीं रहती।

जीव की भाँति अजीव की पर्यायें भी अन्य की अपेक्षा बिना, अपने स्वद्रव्य में ही कर्ता-कर्मरूप से होती हैं।

अहो, ऐसा निरपेक्ष वस्तुस्वरूप.... वह जिसके ज्ञान में बैठ गया, उसका ज्ञान तो जगत से निरपेक्ष होकर आत्मोन्मुख हो गया.... आत्मा के आनंद का वेदन करते-करते वह मोक्ष की ओर चला।

चैतन्य की साधना का उत्सव

जिसे चैतन्य को साधने का उत्साह है, उसे चैतन्य के साधक धर्मात्मा को देखकर उत्साह और उल्लास आता है कि—अहा! यह धर्मात्मा कैसे चैतन्य को साध रहे हैं! और मैं भी चैतन्य को साधूँ... इसप्रकार उसे आराधना का उत्साह जागृत होता है।

जीतो क्षमा से क्रोध को....

यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये

अरे जीव! क्रोध तेरा स्वभाव नहीं है, शांति तेरा स्वभाव है। अपने शांति के समुद्र में तू क्रोध द्वारा आग न लगा। तेरे शांतरस के चैतन्यसमुद्र में से कहीं राग-द्वेष की चिंगारी नहीं निकलती.... उसमें से तो शांति और सुख का वीतरागी अमृत निकलता है। तेरे क्षमादि भावों में अनंत शक्ति है, उसे सम्हाल और क्रोधादि को जीत ले! अज्ञानवश तू रागादि परभावों की आग में सदा जलता रहा है। भाई, अब अपने शांत चैतन्यसमुद्र में से अमृत का पान कर... और उस अमृतपन द्वारा राग की आग को बुझा दे।

[नियमसार, गाथा 115 तथा छहढाला-प्रवचन से]

आत्मा के परम शांतस्वभाव के सेवन द्वारा क्रोधादि कषायों को जीता जा सकता है। अरे जीव! तू तो सर्वज्ञस्वभावी महान तत्त्व परम शांतरस का समुद्र है... तथापि राग की आग में क्यों जल रहा है? भाई, उससे पृथक् होकर अपने समतारस का सेवन कर।

किंचित् प्रतिकूलता आये, कोई निंदा करे, गाली दे, आरोप लगाये, वहाँ तेरी क्रोधाग्नि क्यों भड़क उठती है?—उसमें तो तेरा आत्मा जलता है। दूसरे निंदा करें उससे तुझे हानि नहीं होती, अपने क्रोध से तुझे नुकसान होता है। इसलिये क्षमारूपी चैतन्य के शांतरस द्वारा क्रोधाग्नि को शांत कर। अहा, परम शांतरसमय क्षमा, वह तेरे चैतन्य का स्वरूप है, उस वीतरागी समतारस का स्वाद ले! उस चैतन्य के शांतरस के समक्ष क्रोधादि कषायभाव तो तुझे आग जैसे प्रतीत होंगे। शांति के हिमालय को शीतलता से बाहर निकलकर क्रोधाग्नि में कौन जाये? यहाँ क्रोध का दृष्टांत है; उसकी भाँति समस्त अशुभ या शुभरागरूप जो विभावभाव हैं,

वे सब चैतन्य की शांति के निकट अग्नि जैसे हैं। अज्ञानी चैतन्य को भूलकर सदा राग की आग में जल रहा है। ज्ञानी को भी जितना राग है, उतनी अशांति है। राग, वह आग है, उससे रहित वीतरागी चैतन्यशांति, वह आत्मा का स्वरूप है। हे भाई! वीतरागी समतारूप जल द्वारा तू राग की आग को बुझा। हे भाई! क्षमा द्वारा तू क्रोध को जीत ले। शांतरस के समुद्र से भरपूर यह चैतन्यतत्त्व, उसके अनुभव में किसी कषाय या राग-द्वेष का समावेश नहीं होता; इसलिये उसका अनुभव करने से कषायों पर विजय हो जाती है।

शांति में तो रागादि हैं ही नहीं। धर्मात्मा को जितनी शांति प्रगट हुई है, वह कषाय से भिन्न ही है, उस शांति में दु:ख का वेदन नहीं है, परंतु अभी जितना राग है, जितने क्रोधादि कषाय हैं, उतना दु:ख का वेदन भी है, उसे धर्मी क्लेशरूप समझता है। इसप्रकार धर्मी को एक ओर वीतरागी शांति का वेदन है और एक ओर संसार का क्लेश भी है, दोनों धाराएँ एक-दूसरे से विरुद्ध जाति की होने पर भी धर्मी को वे दोनों धाराएँ एकसाथ वर्तती हैं—ऐसी आश्चर्यकारी धर्मी की दशा होती है।

एक ओर सिद्ध समान अतीनिद्रय महा आनंद भी वर्तता है, साथ ही कषाय का क्लेश भी वर्तता है; ज्ञानभाव से कषायभाव भिन्न है-ऐसा धर्मी जानता है, तथापि जो अल्प भी कषाय है, वह चैतन्य की शांति की पूर्णता में बाधक है और क्लेश पैदा करता है। इसप्रकार धर्मी जीव अपनी दशा के दोनों प्रकारों को यथावत् जानता है; और वीतरागी क्षमादिभाव द्वारा क्रोधादि परभावों को दूर करता है—उसे क्रोधादि के अभावरूप सामायिक होती है। सामायिक में तो परम शांति है।

अरे, अंतर का चैतन्यपाताल फटकर उसमें से जो वीतरागी शांति प्रगट हुई, उस शांति की क्या बात! चैतन्य में से प्रगट हुई इस अपार शांति को कोई प्रतिकूल संयोग डिगा नहीं सकते, कोई भी संयोग उस शांति का घात नहीं कर सकते! देखो, शत्रुंजय पर चारों ओर अग्नि की लपटें भी पांडवों की शांति को घात नहीं कर सकीं; वे तो चैतन्य की शांति-शीतलता के बीच बैठे थे।

अपनी परिणति को अंतर में एकाग्र करके उसमें उत्कृष्ट ज्ञानरूप निज आत्मा को धारण किया, वहाँ अब उस परिणति में क्रोधादि का अवकाश ही नहीं रहा; इसलिये वहाँ सच्ची क्षमा,

सामायिक और 'प्रायश्चित्त' है। उत्कृष्ट ज्ञानपरिणति हुई, वह स्वयं ही प्रायश्चित्त है; उसमें सर्व दोषों का अभाव है। अंतर्मुख परिणति में क्रोधादि भाव को धारण न करके अपने में अपने उत्कृष्ट ज्ञानस्वभाव को धारण किया, वहाँ प्रायश्चित्त है। उत्कृष्ट ज्ञान को धारण करके उसने क्रोधादि कषायों को जीत लिया और स्वयं परम समरसभावरूप हो गई—ऐसे परिणति, वह स्वयं सामायिक है।

देखो, पाँडवों का शरीर जल रहा था, तथापि अंतर के उत्कृष्ट ज्ञानस्वभाव में प्रवेश करके ऐसे लीन हुए कि शांतरस में से बाहर नहीं निकले। जड़ शरीर जल रहा था, परंतु आत्मा तो चैतन्य के शांतरस में निमग्न था। शांतरस में लीनता होने पर किसी विकल्प का अवकाश नहीं रहा, और परम वीतरागी क्षमा धारण करके केवलज्ञान प्राप्त करके शत्रुंजय से मोक्ष प्राप्त किया। आज भी वहीं ऊपर लोकाग्र में सिद्धालय में विराजमान हैं, और अनंतकाल तक वीतरागी सुख में मग्न रहेंगे। पर्याय में जो अनंत सुख आदि प्रगट होता है, वह सब स्वभाव में भरा है;—ऐसे स्वभाव को श्रद्धा में-ज्ञान में-चारित्र में स्वीकार करना, वह सर्व दोष के अभावरूप और शुद्ध ज्ञान के प्रकाशरूप प्रायश्चित्त है। धर्मी जीव को अपने परमतत्त्व की प्राप्ति से परम संतोष हुआ, स्वानुभूति से परम तृप्ति हुई, वहाँ परद्रव्य की आशा न रही, लोभ न रहा।—इसप्रकार परमतत्त्व की प्राप्तिरूप संतोष द्वारा ही लोभ आदि को जीता जा सकता है।

धर्मात्मा की पर्याय में उल्लसित आनंदसमुद्र

[नियमसार, गाथा-121 के प्रवचन से]

अंतर्मुख होकर जिसने निजकारण परमात्मा को जाना है और मिथ्यात्वादि भावों को छोड़कर जिसने प्रायश्चित्त किया है-चित्त को उज्ज्वल किया है, वह धर्मी जीव कहता है कि अहो! चैतन्यसुख का भंडार हमें प्रगट हुआ है, सहज सुख से भरपूर चैतन्यचमत्कार आत्मा अनुभव में आया है; ऐसे आत्मसुख का हम सदा अनुभव करते हैं; और उससे विपरीत भवसुख के (वास्तव में भवदु:ख के) कारणरूप परभावों को हम आत्मा की शक्ति से सर्व प्रकार से छोड़ते हैं, और माया को (काया की ओर के भाव को) छोड़कर, अपनी परिणति को हमने चैतन्यसुख में लगा दिया है। अरे, हमारी ऐसी सहज आत्मसंपदा—जो कि हमारे हृदय में

है और हमारी स्वानुभूति का ही विषय है–उसे हमने पूर्वकाल में एक क्षण भी नहीं जाना था; अब आनंदमय ध्यान द्वारा अपनी ऐसी अद्भुत आत्मसंपदा को अपने अंतर में प्रगट स्वसंवेदन से जाना है, और उसी का सदा अनुभव करते हैं।

अतीन्द्रिय आनंद का नाथ भगवान आत्मा, उसके सन्मुख होने पर सम्यग्दर्शन में आत्मा के सहज आनंद का समुद्र उछलता है, और फिर चारित्र में तो प्रचुर आनंद का वेदन होता है। भाई! इस जीवन की आयु तो मर्यादित हैं और वह क्षण–क्षण में कम हो रही है, और तेरा समय बाह्य कार्यों में व्यतीत होता जाता है। करनेयोग्य यह सच्चा कार्य शेष रह जाता है, तो जीवन में तूने क्या किया? अरे, आत्मकल्याण के बिना जीवन बीत जाये तो वह किस काम का? आत्मा का सम्यग्ज्ञान करना, वह ज्ञानी की सच्ची कला है, वह जीवन में करने योग्य कार्य है और वही पढ़ने योग्य पढ़ाई है। आत्मा के अतीन्द्रिय आनंद का स्पर्श करके जो ज्ञान प्रगट हुआ है, वह ज्ञान मोक्ष को साधता है। चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में आत्मा का अतीन्द्रिय आनंद है। जिसप्रकार क्षीरसागर, वह दूध का सागर है (उसका पानी ही दूध जैसा है) उसीप्रकार चैतन्यसमुद्र आत्मा, वह आनंद का महासमुद्र है, उसके सन्मुख होने पर आनंद की लहरें पर्याय में उछलती हैं। जो आनंद का समुद्र होता है, उसकी लहरें भी आनंदरूप होती हैं। वीतराग चारित्रवंत मुनि... वे तो सिंह जैसे संत हैं, जो चैतन्यानंद की मस्ती में मस्त होकर वन में निवास करते हैं। अंतर में चैतन्यरस का स्वाद लेने में अविचलरूप से ऐसे तल्लीन हैं कि उपसर्ग आदि से भी भयभीत नहीं होते। अहा, चैतन्यानंद की साधना करनेवाले ऐसे संतों को नमस्कार हो। सम्यग्दृष्टि को भी आत्मा के ऐसे आनंद का अनुभव है, भले अल्प हो, परंतु मुनि जैसे अतीन्द्रिय आत्मआनंद का स्वाद सम्यग्दर्शन में धर्मी को आया है। वाह, धन्य अवतार! आत्मानंद को साधकर उन्होंने जन्म सफल किया है।

जिसप्रकार जन्म–कल्याणक में क्षीरसागर के निर्मल जल से कलश भर–भरकर तीर्थंकर परमात्मा का जन्मोभिषेक सौधर्म और ईशानइन्द्र करते हैं, उसीप्रकार आनंदरस का क्षीर समुद्र आत्मा, उसमें से सम्यक्त्व के कलश भर–भरकर आनंदजल से अपने आत्मा का अभिषेक करो... आनंद के समुद्र में आत्मा को निमग्न करो। भाई, अभी ऐसे कल्याण का अवसर है। अहा, सीमंधर परमात्मा के पास से ऐसा ऊँचा माल लाकर कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने

इस भरतक्षेत्र के जीवों को दिया है... धर्म के प्रतिनिधि के रूप में ऐसा ऊँचा माल लाये हैं। अहा, भरतक्षेत्र के संत... उन्होंने देह सहित विदेहक्षेत्र की यात्रा की और साक्षात् परमात्मा से मिले; उनके द्वारा बतलाया गया यह मार्ग है। वे भरतक्षेत्र में जैनशासन की प्रभावना करनेवाले महान संत हैं। उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग वर्तमान में चल रहा है।

संतों के हृदय में परमतत्त्व प्रकाशित है, उसके सहज सुख का अनुभव करनेवाले धर्मात्मा भव सुख को भी अत्यंत छोड़ते हैं;—भवसुख का कारण तो पुण्य-शुभराग है, उस राग को और पुण्य को चैतन्यसुख से भिन्न जानकर धर्मी अपनी शक्ति से उन्हें छोड़ते हैं। अत्यंत छोड़ते हैं। भवसुख अर्थात् पुण्य के फलरूप स्वर्ग आदि का सुख-वह कहीं वास्तव में सुख नहीं है, वह तो कल्पना मात्र सुख है; सच्चा सुख अर्थात् आत्मिकसुख तो सहज चैतन्यपरमतत्त्व के अनुभव में ही है—ऐसे सुख को धर्मी निरंतर अनुभवते हैं; और उसके अतिरिक्त समस्त शुभाशुभ को भवदु:ख का कारण जानकर छोड़ते हैं। वे जानते हैं कि हमारी दृष्टि में-हमारी अनुभूति में आनंदमय परमतत्त्व जयवंत वर्त रहा है। हमारी परिणति से वह दूर नहीं है, हमारी अंतर्मुख परिणति में वह परम तत्त्व विराजमान है; उससे मोह का कोई संबंध नहीं है। मोह का जिसमें अभाव है और अनंत गुण के निर्मलभाव जिसमें उल्लसित होते हैं—ऐसी अंतरपरिणति धर्मी को निरंतर वर्तती है।

चैतन्यपरिणति में अपूर्व सुख के वेदनपूर्वक अपनी आत्मसंपदा को जानने के बाद धर्मी जीव कहता है कि अरे! अपनी ऐसी सुंदर आत्मसम्पदा को मैंने पूर्व काल में अज्ञानभाव के कारण कभी जाना नहीं था, इसलिये भव-भव में दुखी होकर संसार में भटकता फिरा—परंतु अब मैं जागृत हुआ हूँ, मैंने अपना मोक्षघर देख लिया है, अपनी अपूर्व आत्मसंपदा देख ली है; इसलिये अब मैं चैतन्यस्वरूप में से उत्पन्न हुए उत्तम सुख का अनुभव करता हूँ; आत्मा के सहज सुख का निजनिवास मुझे प्रगट हुआ है, और कर्मरूपी विषवृक्ष के समस्त फल को मैंने छोड़ दिया है।—ऐसी उज्ज्वल ज्ञानपरिणति वह स्वयं ही प्रायश्चित्त है।

—धर्मी जीव परमभाव में स्थित रहकर अचिंत्य आत्मसंपदा का अनुभव करते हैं। अहा, ऐसी परम आत्मसंपदा ही हमारी अनुभूति का विषय है। बाह्य के इंद्रिय-विशय हमारे नहीं हैं, उनसे पृथक् होकर अंतर की वचनातीत समाधि द्वारा आत्मसंपदा को विषय करके हम

उसके परम सुख का अनुभव करते हैं। अज्ञानी का यह विषय नहीं है, यह तो धर्मात्मा की अनुभूति का ही विषय है। अहा, अंतर की अनुभूति में जिसने ऐसी अपूर्व आत्म-संपदा को जान लिया है, उसे जगत के कोई बाह्यविषय अपने नहीं लगते, उनमें उसका चित्त स्थिर नहीं होता। एक चैतनयभाव में ही चित्त स्थिर होता है; वही अपना लगता है।

अंतर में चैतन्यप्रभु भगवान विराजमान है, शुद्धोपयोगपरिणति को साथ लेकर उस प्रभु के पास जा। जब किसी श्रेष्ठ पुरुष के पास जाते हैं तो भेंट देने के लिये कोई उत्तम वस्तु साथ लेकर जाते हैं, उसीप्रकार महा चैतन्यप्रभु आत्मा, उसके पास शुद्धोपयोगरूप उत्तम भेंट लेकर जा। अंतर में भगवान की भेंट होने पर तू कृतकृत्य हो जायेगा। अंतर्मुख होकर आत्मा को साधना ही जैनसंस्कृति है। उसमें जीव को वीतरागता के संस्कार आते हैं। जिससे आत्मा में वीतरागभाव के संस्कार आयें, वही सच्ची जैनसंस्कृति है।

धर्मात्मा की आश्चर्यजनक अंतरंग दशा

[एक ही पर्याय में वर्तता हुआ राग का अकर्तापना तथा कर्तापना]

[श्री समयसार, गाथा 320 के प्रवचन से]

धर्मात्मा को चौथा गुणस्थान प्रगट हुआ, तब से आत्मा के आनंदरस की वीतरागी धारा तो निरंतर वर्त रही है, उस आनंदधारा में तो रागादि का किंचित् कर्तृत्व नहीं है; और उसी को दसवें गुणस्थान तक जो राग है, उस राग का वेदन दुःखरूप है;—दोनों धाराओं अत्यन्त भिन्न स्वाद को धर्मी जानता है...

ज्ञायकस्वरूप आत्मा के अनुभवसहित जिसे सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान हुए हैं, और साधकदशा में अभी अल्प रागादि बाधकभाव भी होते हैं—ऐसे धर्मी जीव को अपनी श्रद्धा-ज्ञान पर्याय में तो राग का कर्तापना या भोक्तापना नहीं है; परंतु अभी चारित्र की पर्याय में जितनी अशुद्धता और रागादि है, उनका कर्ता-भोक्तापना अपनी उस पर्याय में है—ऐसा धर्मी जानता है।

शुद्धस्वभाव को ध्येय करके श्रद्धा-ज्ञानादि में जो शुद्ध परिणमन हुआ है, वह रागरहित है, उसमें राग का कर्ता-भोक्तापना नहीं है; परंतु दसवें गुणस्थान तक चारित्रदशा में जो रागादिभाव होते हैं, उस राग का कर्ता कर्तृनय से आत्मा स्वयं है, अपनी पर्याय में उस काल वैसा धर्म है, और उस धर्म का अधिष्ठता आत्मा ही है—इसप्रकार ज्ञानी अपनी पर्याय में राग के कर्तृत्व को तथा भोक्तृत्व को उस समय जानता है। उसी काल में रागादि के अकर्ता-अभोक्तारूप परिणमन भी श्रद्धा-ज्ञानादि पर्यायों में होता है, उसे भी धर्मी जानता है।—ऐसा भगवान का अनेकांत मार्ग है।

साधक की पर्याय में शांति का वेदन तथा राग की आकुलता का वेदन—इसप्रकार दोनों एकसाथ हैं, साधक प्रमाणज्ञान में दोनों धर्मी को अपना जानता है। उसमें जब सम्यक्त्वादि शुद्ध भाव की विवक्षा से देखा जाये, तब आत्मा को शांति का वेदन है, उसमें अशांति है ही नहीं। और जब पर्याय में रागादि हैं, उस विवक्षा से देखा जाये, तब आत्मा को राग के दु:ख का वेदन है, वह स्वयं ही राग का कर्ता-भोक्ता है। शुद्धता को मुख्य करके उसमें सिर्फ आनंद का ही वेदन कहा, और रागादिभाव उस शुद्धता से भिन्न रह गये, इसलिये उनका कर्ता-भोक्ता ज्ञानी नहीं है—ऐसा कहा है। वस्तु का स्वरूप सब पक्षों से (समस्त धर्मों से) यथावत् जानना चाहिये।

धर्मात्मा के ज्ञान का कोई अंश राग में प्रवेश नहीं करता और राग का कोई अंश ज्ञान में प्रवेश नहीं करता, इसलिये ज्ञानभाव स्वयं कदापि राग का कर्ता या भोक्ता नहीं है। और फिर भी अपनी पर्याय में जो रागादि का कर्ता-भोक्तापना वर्तता है, उसे भी ज्ञानी का ज्ञान जानता है।—वहाँ जानने की क्रिया में एकत्वबुद्धि (तन्मयता) है, राग की क्रिया को ज्ञानक्रिया से भिन्न जानता है, इसलिये ज्ञानादिभाव तो रागरहित ही हैं।

ज्ञानी को राग का-दु:ख का वेदन होता है ?

—हाँ, उसे अपनी पर्याय में जितना राग है, उतना दु:ख का वेदन भी है। जितनी शुद्धता है, उतनी शांति का वेदन है और उसके साथ जितना राग है, उतना दु:ख का वेदन भी है। अनंत नयों में से भोक्तानय द्वारा वह ज्ञानी उस दु:ख का भोक्तापना अपने में जानता है; पर्याय में ऐसे भोक्तापने का धर्म है, और उन धर्मों का अधिष्ठाता आत्मा है। अरे, चौदहवें गुणस्थान के अंत समय तक जो असिद्धत्वभावरूप विभाव है। (उदयभाव है), वह भी जीव का स्वतत्त्व है, जीव की सत्ता में उसका अस्तित्व है।

श्रुतज्ञानप्रमाण अनंत नयों में व्याप्त है, और वह अनंत धर्मोंवाले एक आत्मा को जानता है। अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में जो-जो धर्म हैं, उन्हें ज्ञानी जानता है। उसमें जितना रागादि का कर्ता-भोक्तापना अभी पर्याय में वर्तता है, उसे भी धर्मी जानता है। एक ओर स्वभाव की शांति का वेदन है, उसे भी जानता है, और दूसरी ओर (उसी पर्याय में) रागादि की अशांति का भी वेदन है-दोनों धर्मों को ज्ञानी अपनी पर्याय में ज्यों का त्यों जानता है। जो शांति है, उसमें अशांति नहीं है, इसलिये रागरहित जो ज्ञानभाव है, उसमें तो शांति का ही वेदन है, और साधक को जितने रागादि हैं, उतनी अशांति का वेदन है। इसप्रकार ज्ञानभाव और रागभाव दोनों का कार्य भिन्न-भिन्न है; तथापि साधक की पर्याय में दोनों एक साथ वर्तते हैं। अपनी पर्याय में हैं, इस अपेक्षा से आत्मा ही उनका कर्ता और भोक्ता है।

— परन्तु आत्मा के भूतार्थस्वभाव की दृष्टि से देखने पर उसमें शुद्धता का ही कर्ता-भोक्तापना है, उसमें अशुद्धता का कर्ता-भोक्तापना नहीं है। इसलिये ज्ञानी उन रागादि को अपनी पर्याय में जानने पर भी, और पर्याय में उनका कर्ता-भोक्तापना जानने पर भी उसमें उसे एकत्वबुद्धि नहीं है; एकत्वबुद्धि तो पर से भिन्न अपने सुंदर एकत्वस्वभाव में वर्तती है।

अहो, श्रुतज्ञान में अनंत धर्मों को जानने की शक्ति है, क्योंकि उसमें अनंत नयों का समावेश है। अपने आत्मा में द्रव्य-गुण अपेक्षा से, पर्याय अपेक्षा से जितने शुद्ध-अशुद्ध भाव हैं, उन्हें बराबर अपने अस्तित्व में जानना चाहिये। ज्ञानी को राग हो, उसका वेदन उसे है ही नहीं—ऐसा नहीं है, उसे उस राग का दुःखरूप वेदन तो है, परंतु उसी समय उससे भिन्न स्वभाव की शुद्धता का और शांति का वेदन उसे वर्तता ही है, उस वेदन में रागादि का अभाव होने से ज्ञानी को उसका अकर्ता-अभोक्ता कहा है। दोनों अपेक्षाओं को धर्मी जीव भलीभाँति जानता है। अपनी पर्याय में राग है, उतना दुःख है—उसका अस्तित्व ही न माने तो ज्ञान अंधा हुआ, उस ज्ञान ने अपनी पर्याय के दोष को भी नहीं जाना—वह तो शुभराग आदि दोषों को गुण के साथ मिला देगा, इसलिये गुण के स्वरूप का सच्चा ज्ञान ही उसे नहीं होगा। धर्मी जीव दोष को दोषरूप अच्छी तरह जानता है, अपने में जितना शुभराग है, उतना भी अपराध है, ऐसा जानता है, परंतु उस दोष के किसी अंश को गुण में नहीं मिलाता।

श्री अमृतचंद्राचार्यदेव भी (तीसरे कलश में) कहते हैं कि मैं शुद्ध चैतन्यमूर्ति होने पर

भी अभी मेरी परिणति रागादि से मलिन है। जितनी मलिनता है, उतना दु:ख भी है; और वह पर्याय भी मेरी है—ऐसा ज्ञानी जानते हैं। स्वभाव से शुद्ध चैतन्यमूर्ति हूँ—उसकी श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र से परिणति में शुद्धता भी हुई है—अपूर्व वीतरागी शांति का वेदन भी वर्त रहा है और साथ में जो रागादि दोष शेष हैं, वे भी अपनी पर्याय में हैं, अपने अस्तित्व में हैं।—ऐसा अनेकांत की शरण से धर्मी जीव जानते हैं। अपने में द्रव्य-गुण-पर्यायरूप अनंत धर्म जैसे हैं, उन्हें वैसा ही जाने बिना स्वज्ञेय का सच्चा ज्ञान कहाँ से होगा? स्व-ज्ञेय के समस्त पक्षों को बराबर जाने तो उनमें हेय-उपादेय का विवेक करे और शुद्ध स्वभाव के आश्रय से उपादेयभाव प्रगट करके रागादि हेयभावों को छोड़े—इसप्रकार वस्तु के सच्चे ज्ञानपूर्वक मोक्षमार्ग सधता है। महावीर भगवान ने आत्मा का ऐसा स्वरूप प्रसिद्ध किया है। ऐसे वस्तुस्वरूप का ज्ञान करना, वह महावीर परमात्मा के निर्वाण-महोत्सव को सच्चे रूप में मनाना है। भगवान महावीर ने जो कहा-उसे जाने बिना मोक्ष का सच्चा उत्सव कैसे मनाया जा सकता है।

ज्ञानी को साधकदशा में स्वभाव की शांति तथा राग की अशांति—इन दोनों का वेदन होता है, उन दोनों भावों को अपने में जैसे हैं, उसीप्रकार ज्ञानी जानता है। अपने में जितनी अशुद्धता है, उसे जाने ही नहीं तो उसे दूर कैसे करेगा? और अशुद्धता जितना ही अपने को मान ले, और उसी समय स्वभाव की शुद्धता का वेदन किंचित् न रहे तो वह मिथ्यादृष्टि है। पर्याय में जितने रागादि दोष हैं, उनका वेदन भी अपने को ही है, तदुपरांत धर्मी को उसी काल राग से भिन्न अपनी चेतना का वेदन भी वर्तता है।—ऐसी आश्चर्यजनक साधकदशा है, उसे धर्मी ही जानता है। एकांतवादी उसे नहीं जान सकते।

ज्ञानी तो राग का अवेदक है ना?

स्वभावदृष्टि से उसे जितनी शुद्धता हुई है, उस शुद्धता में रागादि का किंचित् वेदन नहीं है—यह सच है, परंतु पर्याय में अभी जितना अशुद्ध-रागादिरूप परिणमन शेष है, वह परिणमन अपना है और पर्याय में उसका वेदन भी है—ऐसा ज्ञानी पर्यायनय से जानता है। रागादि होने पर भी उन्हें जाने ही नहीं तो वह ज्ञान मिथ्या सिद्ध होता है। उस पर्याय में उस कालपर्यन्त रागादि के कर्तापनेरूप भाव है, कर्तृनय से आत्मा स्वयं उस कर्तृधर्मवाला है।—परंतु उसी समय अन्य अनंत धर्मों में रागादि न करे, ऐसा अकर्तृस्वभाव भी अपने में

विद्यमान है। उसे धर्मी जानता है, इसलिये उसे अकेली पर्यायबुद्धि नहीं होती, रागादि में ज्ञान की एकत्वबुद्धि नहीं हो जाती। राग और ज्ञान की भिन्नता के भानसहित अपनी पर्याय में ज्ञानधारा और रागधारा को यथावत जानता है। उसका कर्ता भी है, भोक्ता भी है, और उसी समय रागादि के अकर्ता-अभोक्तापने का भाव भी धर्मी को पर्याय में वर्तता है।—अहो, अनेकांतमय वस्तुस्वरूप! ऐसे वस्तुस्वरूप को जानकर हे जीवो! तुम आज ही आत्मा में से आनंद प्रगट करके उस आनंद का अनुभव करो। ***

[इसे विशेष स्पष्ट समझने के लिये प्रवचनसार के परिशिष्ट में 'आत्मप्राप्ति' के वर्णन में आचार्यदेव ने ४७ नयों से आत्मा का वर्णन किया है। उसमें कर्तृनय और अकर्तृनय, तथा भोक्तृनय और अभोक्तृनय भी हैं; उस प्रवचन का सारांश आप आगामी अंक में पढ़ेंगे।]

आत्मा का ज्ञान, सो वीतराग-विज्ञान, वीतराग-विज्ञान, वह सुख की खान

शरीर से भिन्न आत्मा आनंद का धाम है, ऐसे आत्मा का ज्ञान करना, वह वीतरागविज्ञान है; वीतरागविज्ञान, वह सुख की खान है।

शरीर सुंदर रूपवान हो या कुरूप हो, उन दोनों से आत्मा भिन्न है। वास्तव में तो आत्मा का चेतनरूप है, वही सुंदर है; परंतु अपने सुंदर निजरूप को न देखते हुए अज्ञानी शरीर की सुंदरता द्वारा अपनी शोभा मानता है, और शरीर कुरूप होने पर वहाँ अपने को तुच्छ समझता है। परंतु भाई! कुरूप शरीर कहीं केवलज्ञान प्राप्त करने में विघ्नरूप नहीं होता, और सुंदर रूपवान शरीर कहीं केवलज्ञान प्राप्त करने में सहायता नहीं करता। अनेक जीव रूपवान होने पर भी पाप करके नरक में गये हैं, और कुरूप जीव आत्मज्ञान करके मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। यद्यपि तीर्थंकरादि उत्तम पुरुषों का तो शरीर भी लोकोत्तर होता है, परंतु वह आत्मा से तो भिन्न ही है। शरीर कहीं आत्मा की वस्तु नहीं; शरीर से भिन्न आत्मा को जो जानता है, उसी ने भगवान के सच्चे रूप को पहिचाना है। शरीर कहीं भगवान नहीं है, भगवान तो अंतर में जो चैतन्यमूर्ति केवलज्ञानादि गुणसहित विराजमान है-वही है। प्रत्येक आत्मा ऐसा चेतनरूप है; शरीर सुंदर हो या असुंदर—वह तो जड़ का रूप है, आत्मा कभी भी जड़रूप नहीं हुआ है। जड़ तीनों काल में जड़ रहता है, और चेतन तीनों काल में चेतन रहता है; जड़ और चेतन कभी भी एक नहीं होते; शरीर और जीव सदा भिन्न ही हैं। ऐसे आत्मा को अनुभव में लेने पर सम्यग्दर्शन और अपूर्व शांति होती है। ऐसे आत्मा की धर्मदृष्टि के बिना दुःख नहीं मिटता और शांति नहीं होती।

हे जीव! शारीरिक शृंगार से तेरी शोभा नहीं है; तेरी शोभा तो अपने निजगुण द्वारा है। सम्यग्दर्शनादि अपूर्व रत्नों द्वारा ही आत्मा की शोभा है। शरीर तो चेतनारहित मृतक कलेवर है; क्या उसके शृंगार से आत्मा की शोभा है? नहीं, चैतन्यभगवान की शोभा जड़ शरीर द्वारा नहीं होती। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रय द्वारा ही आत्मा शोभायमान है। इसलिये देहदृष्टि छोड़कर आत्मा को पहिचानो! आत्मा की ऐसी पहिचान ही वीतराग-विज्ञान है और वीतराग-विज्ञान, वह सुख की खान है।

श्री पंडित दीपचंदजी साधर्मीकृत

ज्ञान-दर्पण

[अंक 339 से आगे]

पंच परमेष्ठी-वर्णन (दोहा)

सकल एक परमातमा, गुण ज्ञानादिक सार।
सुध परणति परजाय है, श्रीजिनवर अविकार॥90॥

छियालीस गुण (सवैया)

विमल सरीर जाकौ रुधिर वरण खीर, स्वेद तन नाहिं आदि संस्थान धारी है।
संहनन आदि अति सुंदर स्वरूप लिएँ, परमसुगंध देह महासुखकारी है।
धरै सुभ लक्षण कौं हित मित बैन जाके, बल है अनंत प्रभु दोष-दुखहारी है।
अतिसय सहज दस जनमतैं दोंइ ऐसे, तिहुंलोकनाथ भवि जीव निसतारी है॥91॥
गगन गमन जाकै होय शत योजन मैं, सुभिक्ष है चारों दिशि छाया नाहि पाइए।
नयन पलक नाहिं लगै न आहार ताकै, सकल परम विद्या प्रभु कै बताइए।
प्राणी कौ न वध उपसर्ग नहिं पाइयतु, फटिक समान तन महा सुद्ध गाइए।
केस नख बढ़ै नाहिं घातिया करम गएं, अतिसय जिनेंदजी के मनमैं अनाइए॥92॥
सकल अरथ लिएँ मागधीय भाषा जाकैं, तहाँ सब जीवन कै मित्रता ही जानिए।
दरपन सम भूमि गंधोदक वृष्टि होय, परम आनंद सब जीव कौ बखानिए।
सब रितु के फलफूल ह्वै वनसपति, यौं न देवभूमि मैं जै अकंटक यौं मानिए।
चरणकमल तलि रचहि कमल सूर, मंगल दरब वसु हीये मैं प्रमानिए॥93॥
विमल गगन दिसि बाजत सुगंध वायु, धान्य को समूह फलै महासुखदानी है।
चतुरनिकाय देव करे जयनाद जहाँ, धर्मचक्र देखि सुख पावै भवि प्रानी है।
देवन के कीए यह अतिसय चउदह, महिमा सुपुण्यकेरी जग में बखानी है।
कहैं 'दीपचंद' जाकौं इन्दहू से आय नमैं, ऐसो जिनराज प्रभु केवल सुज्ञानी है॥94॥
करत हरण शोक ऐसौ है अशोक-तरु, देवन की करी फूलवृष्टि सुखदाई है।
दिव्यध्वनि करि महाश्रवणकौं सुख होत, सिंहासन सोहै सुर चमर ढराई है।
भामंडल सोहै सुखदानी सब जीवनकौं, दुदुंभि सुवाजैं जहाँ अति अधिकाई है।
त्रिभुवनपति प्रभु यातैं हैं छतर तीन, महिमा अपार ग्रंथ-ग्रंथन मैं गाई है॥95॥

[क्रमशः]

विविध समाचार

सोनगढ़—परम पूज्य गुरुदेव सुख शांति में विराजमान हैं; प्रातःकाल श्री नियमसारजी शास्त्र के निश्चय परमावश्यक अधिकार पर तथा दोपहर को श्री समयसारजी शास्त्र के सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार पर पूज्य स्वामीजी के अध्यात्मरसयुक्त भाववाही प्रवचन होते हैं। श्री परमागम मंदिर का निर्माण-कार्य द्रुतगति से चल रहा है। पिछले दिनों भाद्रपद कृष्णा दोज, बुधवार तारीख 15-8-73 को पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन का जन्मोत्सव बड़ी धामधूम से मनाया गया, जिसके विशेष समाचार इसी अंक में दिये गये हैं।

इटावा (उ.प्र.)—यहाँ तारीख 2-7-73 के दिन वीतराग-विज्ञान की दो पाठशालाएँ प्रारंभ की गई हैं। एक पाठशाला मुहल्ला फुलनदेवी तथा दूसरी पाठशाला मुहल्ला करनपुरा में है। तीसरी पाठशाला मुहल्ला लालपुरा में पहले से ही चल रही है। इनके अतिरिक्त और दो पाठशालाएँ खोलने की योजना विचाराधीन है। श्री पंडित रमेशचंद्रजी जैन शिक्षणकार्य करते हैं।

—जयंतीप्रसाद जैन : मंत्री
श्री ज्ञानधन दि० जैन धर्मार्थ संस्था, इटावा

उदयपुर (राज०)—मुमुक्षु मंडल के आमंत्रण पर तारीख 7-7-73 को जयपुर निवासी श्री पंडित हुकमचंदजी शास्त्री पधारे थे। उन्हीं के साथ श्री ब्रह्मचारी धन्यकुमारजी बेलोकर तथा जयपुर प्रिन्टर्स के संचालक श्री सोहनलालजी भी पधारे थे। पंडितजी के आध्यात्मिक प्रवचन प्रतिदिन तीन बार होते थे। आपके व्याख्यानों में निश्चय-व्यवहार, उपादान-निमित्त आदि विषयों का अच्छा स्पष्टीकरण होता था। श्रोतागण विशाल संख्या में उपस्थित रहते थे। उदयपुर के जैनसमाज को अष्टाह्निका पर्व में आपके द्वारा अच्छा लाभ प्राप्त हुआ। तारीख 15-7-73 को आप कुरावड समाज के आमंत्रण पर वहाँ गये और भव्य स्वागत हुआ। वहाँ भी आपने सात प्रवचनों द्वारा समाज को लाभान्वित किया।

दमोह (म.प्र.)—दि. जैन समाज के आमंत्रण पर श्री पंडित दीपचंदजी (जो कि श्री एन.सी. जवेरी की ओर से धर्मप्रचार हेतु भ्रमण करते हैं) जबलपुर से 12-7-73 को दमोह पधारे। छह दिन तक जिनमंदिरों में विविध कार्यक्रम चलाये। पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों के टेपरिकार्ड सुनाना, तीर्थक्षेत्रों की यात्रा की फिल्में दिखाना, तथा प्रवचन, शिक्षण आदि के

कार्यक्रम प्रतिदिन तीन बार होते थे। परिणामत: यहाँ श्री कपूरचंदजी सर्राफ की अध्यक्षता में जैन स्वाध्याय मंडल की स्थापना हो चुकी है। जिसमें प्रतिदिन शास्त्र-स्वाध्याय एवं प्रवचनादि के कार्यक्रम चलेंगे। —ब्रह्मचारी दीपचंद जैन

देपालपुर (इंदौर)—यहाँ श्री वीतराग विज्ञान पाठशाला एवं मुमुक्षु मंडल की स्थापना हो चुकी है। श्री ताराचंदजी एम.ए. (संस्कृत अध्यापक) द्वारा नि:शुलक शिक्षण-कार्य प्रारंभ हो चुका है। श्री प्रहलादजी मंदसौरवालों की इन कार्यों में विशेष प्रेरणा है।

— विमलप्रकाश अजमेरा

जबेरा (दमोह-म.प्र.)—दिनांक 28-7-73 हमारे आमंत्रण से पंडित दीपचंदजी जैन यहाँ पधारे तथा जैन तीर्थयात्रा की फिल्म एवं टेपरेकार्ड द्वारा पूज्य स्वामीजी के प्रवचन तथा शास्त्रसभा द्वारा जैन समाज में 7 दिन तक अतीव धार्मिक प्रभावना की; यहाँ वीतराग विज्ञान पाठशाला (लड़कियों तथा लड़कों की) चालू है और श्री दीपचंदजी की प्रेरणा से दिनांक 23-7-73 को महिलाओं की पाठशाला का उद्घाटन किया गया। पंडितजी के द्वारा संपूर्ण जैन समाज में अपूर्व धर्म-प्रभावना हुई; जिसके लिए हमारा समाज सोनगढ़ की संस्था का अत्यंत आभारी है। —लक्ष्मीचंद जैन

करेली (म.प्र.)—दिनांक 29-7-73 हमारे आमंत्रण से ब्रह्मचारी पंडित दीपचंदजी यहाँ आए और टेपरिकार्डिंग द्वारा पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचन सुनाये, शास्त्रसभा, तीर्थयात्रा की फिल्म आदि कार्यक्रम सात दिन तक चलता रहा। समाज की ओर से श्री पन्नालालजी ने बहुत बहुत उपकार माना। ठहरने के लिये काफी अनुरोध किया किंतु आगे का कार्यक्रम निश्चित होने से पंडितजी अधिक नहीं ठहर सके। — मंत्री, केरली दिगम्बर जैन समाज

शमशाबाद (विदिशा)—तारीख 1 जुलाई 1973 को श्री वीतराग-विज्ञान महिला पाठशाला का उद्घाटन किया गया। सभी महिलाओं में इतनी अधिक धर्म प्रभावना है कि वह प्रतिदिन शाम को एक घंटे का समय निकालकर महिला पाठशाला लगाती हैं। इस पाठशाला की अध्यापिका श्री दौलतबाई जैन हैं।

बालकों के लिये श्री वीतराग विज्ञान पाठशाला का भव्य उद्घाटन तारीख 5 जुलाई 1973 को किया गया। संयोजक श्री बाबूलालजी जैन, अध्यक्ष श्री पन्नालालजी भंडारी।

प्रेषक—संतोषकुमार जैन, बी.ए., शमशाबाद (विदिशा, म.प्र.)

अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले
आध्यात्मिक प्रकाशन

1	समयसारजी (पद्यानुवाद)	0.50
2	समयसारजी (कलश-टीका) (राजमलजी कृत)	2.75
3	समयसारजी प्रवचन (भाग-1)	4.50
4	समयसारजी प्रवचन (भाग-2)	4.50
5	नियमसार पद्यानुवाद	0.30
6	पंचास्तिकाय	3.50
7	द्रव्यसंग्रह	1.20
8	मोक्षशास्त्र-तत्त्वार्थसूत्र (बड़ी टीका) चतुर्थावृत्ति	6.00
9	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (जिनागम रहस्यकोश)	3-50
10	धर्म की क्रिया	1.60
11	सम्यग्दर्शन भाग-1	2.50
12	ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव	3.00
13	अनुभवप्रकाश	0.65
14	अपूर्व अवसर प्रवचन	1.65
15	अष्ट-प्रवचन (भाग-1)	1.50
16	अष्ट-प्रवचन (भाग-2)	1.50
17	चिद्विलास	1.50
18	जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-1	1.00
19	जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-2	1.10
20	जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-3	0.75
21	मूल में भूल	1.00
22	भेदविज्ञानसार (समयसार सर्व-विशुद्धि अधिकार पर प्रवचन)	2.00
23	लघु जैनसिद्धान्त प्रवेशिका	0.25
24	सैद्धांतिक चर्चा (लेख नं.7 से 14)	1.75
25	सन्मति संदेश (महत्त्वपूर्ण विशेषांक)	0.50
26	तत्त्वनिर्णय	0.20
27	शास्त्र समझने की पद्धति	0.12
28	निमित्त-नैमित्तिक संबंध क्या है ?	0.15
29	भगवान महावीर	0.20
30	अध्यात्मवाणी, भाग-2	0.85
	अमृतवाणी, भाग-3	1.10
31	जैन बालपोथी (भाग-1)	0.25
32	जैन बालपोथी (भाग-2)	0.40
33	बालबोध पाठमाला, भाग-1	0.45
34	बालबोध पाठमाला, भाग-2	0.55
35	बालबोध पाठमाला, भाग-3	0.55
36	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-1	0.55
37	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-2	0.75
38	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-3	0.75
39	तत्त्वज्ञान पाठमाला, भाग-1	1.00
40	अर्चना (पूजा संग्रह)	0.20
41	पंचम गुणस्थान की 11 प्रतिमाएँ	0.25
42	मोक्षमार्गप्रकाशक, अध्याय-9	0.75
43	सुंदर लेख कोपी	0.25
44	आत्मधर्म वार्षिक चंदा (वैशाख से चैत्र तक)	4.00
	आत्मधर्म आजीवन सदस्य	101.00
45	मंगल तीर्थयात्रा (बड़ा सचित्र अंक) जो 30) रुपये का (गुजराती भाषा में) ग्रंथ मात्र	6.00
46	द्रव्यदृष्टि प्रकाश	1.00
47	महावीर तीर्थंकर भगवान	0.28

प्राप्तिस्थान

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-5, बापूनगर, जयपुर-4 (राजस्थान)

दस प्रश्न - दस उत्तर

★ जगप्रसिद्ध तत्त्व क्या है ?
चैतन्यतत्त्व जगप्रसिद्ध है।

★ मुमुक्षु के हृदय की बात क्या है ?
निर्विकल्प शुद्ध चैतन्य की अनुभूति वह मुमुक्षु के हृदय की बात है।

★ सिद्धि के लिये मुमुक्षु क्या करता है ?
मुमुक्षु सर्वप्रथम सर्वज्ञस्वभावी शुद्ध निर्विकल्पतत्त्व को जानता है।

★ वह निर्विकल्प तत्त्व कहाँ विराजमान है ?
संतों की ज्ञानपरिणति में वह आनंद सहित विराजमान है।

★ इस महान भवसमुद्र को पार करने के लिये कहाँ जाना ?
इससे भी महान जो ज्ञानसमुद्र, उसमें उतरने से भवसमुद्र को पार किया जाता है।

★ सम्यक्त्व होने पर क्या हुआ ?
आनंद से परिपूर्ण आत्मतत्त्व हाथ में आया।

★ सर्वज्ञदेव के उपदेश का फल क्या ?
आत्मा का हित हो वह; क्योंकि सर्वज्ञदेव 'हितोपदेशी' हैं।

★ संतों की वाणी कैसी है ?
संतों की वाणी तो भव के अंत की वाणी है।

★ जैनशासन कैसा है ?
मोहरहित शुद्धभावरूप जैनशासन है।

★ क्या शुभरागवाले ज्ञानी धर्मी हैं ?
हाँ; परंतु उनके सम्यक्त्वादि शुद्धभाव, वह धर्म है, जो शुभराग है, वह धर्म नहीं है।

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)